गांधीजी के जीवन के प्रेरणात्मक प्रसंग
प्रभु ही मेरा रक्षक है
मेरा जीवन ही मेरा संदेश है

प्रकाशक

यशपाल जैन
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
एन ७७, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली

श्रीकृष्ण जन्म-स्थान
सेवा-संस्थान
मथुरा

•

तीसरी बार : १६८१

मूल्य : तीन रुपये

•

मुद्रक
अग्रवाल प्रिंटर्स
दिल्ली

प्रकाशकीय

महात्मा गांधी उन महापुरुषों में से थे, जिन्होंने मनुष्य के चरित्र को सबसे अधिक महत्व दिया। वह मानते थे कि समाज की बुनियादी इकाई मनुष्य है। यदि वह अपने को सुधार ले तो समाज अपने आप सुधर जायगा।

अपनी इस मान्यता को व्यक्त करने से पहले उन्होंने अपने जीवन को कसौटी पर कसा। सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य आदि ग्यारह व्रतों का पालन किया और दूसरों द्वारा किये जाने का आग्रह रखा। दैनिक जीवन की छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी बातों में वह बराबर जागरूक रहे और अपने सिद्धान्तों पर दृढ़तापूर्वक चलते रहे।

इस पुस्तक-माला की दस पुस्तकों में उनके जीवन के चुने हुए प्रसंग दिये गये हैं। ये प्रसंग इतने रोचक, शिक्षाप्रद तथा प्रेरणादायक हैं कि कोई भी पाठक उनसे प्रभावित हुए बिना नही रह सकता।

ये पुस्तकें गांधी जन्म-शताब्दी वर्ष में प्रकाशित हुई थीं। हाथों-हाथ बिक गयीं। कुछ के नये संस्करण हुए। कुछ के नहीं हो पाये। कागज और छपाई के दामों में असामान्य वृद्धि हो जाने के कारण उन्हें सस्ते मूल्य में देना असंभव हो गया। पर पुस्तकों की मांग निरन्तर बनी रही।

हमें हर्ष है कि अब यह पुस्तक-माला 'सस्ता साहित्य मंडल' तथा 'श्रीकृष्ण जन्म-स्थान सेवा-संस्थान' के संयुक्त प्रकाशन के रूप में निकल रही है। उसके प्रसंग कम नहीं किये गये हैं, पृष्ठ उतने ही रखे गये हैं, फिर भी मूल्य कम-से-कम रखा गया है।

हमें आशा ही नही, पूरा विश्वास है कि पाठक इस पूरी पुस्तक-माला को खरीदकर मनोयोगपूर्वक पढ़ेंगे और इससे अपने जीवन में भरपूर लाभ लेंगे।

—मंत्री

भूमिका

जो बात उपदेशों के बड़े-बड़े पोथे नहीं समझा सकते, वह उन उपदेशों में से किसी एक को भी जीवन में उतारने के समझ में आ जाती है। इसलिए गांधीजी कहते थे कि मेरा जीवन ही मेरा सन्देश है। उनके जीवन का यह सन्देश उनके दैनन्दिन जीवन की घटनाओं में प्रदर्शित और प्रकाशित होता है।

संसार के तिमिर का नाश करने के लिए मानव-इतिहास में जो व्यक्ति प्रकाश-पुंज की भांति आते हैं उनका सारा जीवन ही सत्य और ज्ञान से प्रकाशित रहता है। गांधीजी के जीवन में यह बात साफ दिखाई देती है। इस पुस्तक-माला में गांधीजी के जीवन के चुने हुए प्रसंगों का संकलन करने का प्रयास किया गया है। उनका प्रकाश काल के साथ मन्द नहीं पड़ता। वे क्षण में चिरन्तन के जीवन के किसी पहलू को प्रदर्शित करते हैं। उनकी प्रेरणा स्थानीय न होकर विश्वव्यापी है।

ये प्रसंग गांधीजी के जीवन से सम्बन्धित प्रायः सभी पुस्तकों के अध्ययन के बाद तैयार किये गए हैं। हर प्रसंग की प्रामाणिकता की पूरी तरह रक्षा की गई है। फिर भी वे अपने आपमें सम्पूर्ण और मौलिक हैं।

यह पुस्तक-माला अधिक-से-अधिक हाथों में पहुंचे तथा भारत की सभी भाषाओं में ही नहीं, वरन् संसार की अन्य भाषाओं में भी इसका अनुवाद हो, ऐसी अपेक्षा है। मैं आशा करता हूं कि यह पुस्तक-माला अपनी प्रभा से अनगिनत लोगों के जीवन को प्रेरित और प्रकाशित करेगी।

रंगनाथ दिवाकर

विषय-सूची

विचार जबतक आचरण
के रूप में प्रकट नहीं होता,
वह कभी पूर्ण नहीं होता।
आचरण आदमी के विचार
को मर्यादित करता है।
जहां विचार और आचार
के बीच पूरा-पूरा मेल
होता है, वहीं जीवन भी
पूर्ण और स्वाभाविक बन
जाता है।

हि० ब० [illegible]

प्रभु ही मेरा रक्षक है

दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी के साथ उनके जर्मन मित्र कैलनबैक रहते थे। गांधीजी के प्रयोगों में वह उनका बराबर साथ देते थे। उन्हीं दिनों किसी गलतफहमी के कारण कुछ भोले-भाले पठान गांधीजी से नाराज़ हो गये। कुछ लोगों ने उनको और भी भड़का दिया। वातावरण गर्म हो उठा। लगा, वे पठान किसी भी समय गांधीजी पर हमला कर सकते हैं। कैलनबैक को भी यह बात मालूम हुई। तबसे वह बराबर गांधीजी के साथ रहने लगे। गांधीजी को मालूम न हो, इस तरह जहां भी गांधीजी जाते, वह भी उनके साथ हो लेते।

एक दिन दफ्तर से बाहर जाने के लिए गांधीजी कोट पहन रहे थे। कैलनबैक का कोट भी पास ही टंगा हुआ था। गांधीजी ने देखा कि उनकी जेब भारी है। उनको ऐसा अनुभव हुआ, जैसे उसमें रिवाल्वर हो। उन्होंने तुरंत जेब की तलाशी ली। सचमुच उसमें रिवाल्वर था। उन्होंने कैलनबैक को बुलाया। पूछा, "यह रिवाल्वर अपनी जेब में किसलिए रखते हैं ?"

कैलनबैक सहसा हतप्रभ हो उठे। लज्जित होकर उत्तर दिया, "कुछ नहीं, ऐसे ही।"

गांधीजी हँस पड़े। बोले, "रस्किन और टॉल्सटॉय की पुस्तकों

में क्या कहीं ऐसा लिखा है कि बिना कारण रिवाल्वर जेब में रखा जाय ?"

इस परिहास से कैलनबैक और भी शर्मिन्दा हुए। बोले, "मुझे पता लगा है कि कुछ गुण्डे आपपर हमला करनेवाले हैं।"

"और आप उनसे मेरी रक्षा करना चाहते हैं ?"

"जीहां, मैं इसीलिए आपके पीछे-पीछे रहता हूं।"

कैलनबैक का यह उत्तर सुनकर गांधीजी खूब हँसे। बोले, "अच्छा, तब तो मैं निश्चिन्त हुआ। मेरी रक्षा करने का प्रभु का जो उत्तरदायित्व था, वह आपने ले लिया है। जबतक आप जीवित हैं तबतक मुझे अपने-आपको सुरक्षित समझना चाहिए। वाह, मेरे प्रति स्नेह के कारण आपने प्रभु का अधिकार छीन लेने का खूब साहस किया !"

यह सुनकर कैलनबैक विचलित हो उठे। उन्हें अपनी भूल मालूम हुई। गांधीजी फिर बोले, "क्या सोच रहे हो ? यह भगवान के प्रति श्रद्धा के लक्षण नहीं हैं। मेरी रक्षा की चिन्ता मत करो। मेरी चिन्ता करनेवाला तो वह सर्वशक्तिमान प्रभु है। इस रिवाल्वर से आप मेरी रक्षा नहीं कर सकते।"

अत्यन्त नम्र भाव से कैलनबैक बोले, "मेरी भूल हुई। मैं अब और आपकी चिन्ता नहीं करूंगा।"

यह कहकर उन्होंने वह रिवाल्वर फेंक दिया।

धमकी देना हिंसा है

गांधीजी जोहानिसबर्ग (दक्षिण अफ्रीका) में वकालत करते थे। श्री पोलक उनके साथ थे। वह उनका हिसाब-किताब रखते थे। गांधीजी का एक मुवक्किल था। वह फीस समय पर नहीं देता था। धीरे-धीरे उसपर बहुत कर्जा चढ़ गया, परन्तु बार-बार तकादा करने पर भी उसने भुगतान करने की ज़रा भी चिन्ता नहीं की।

जब पोलक बहुत परेशान हो उठे तो उन्होंने अदालत में जाने का निश्चय किया। उसके लिए जरूरी कागजात तैयार किये और गांधीजी के पास जाकर बोले, "इन कागजों पर हस्ताक्षर कर दीजिये।"

गांधीजी उन कागजों को पढ़कर पोलक से बोले, "क्या आप नहीं जानते कि मैं इस प्रकार के कामों के लिए अदालतों के दरवाजे नहीं खटखटाता? धमकी देना हिंसा ही तो है और हिंसा के द्वारा किसी भी व्यक्ति को ईमानदार नहीं बनाया जा सकता। अगर वह व्यक्ति मेरे पैसे नहीं चुकाता तो मुझे अपनी मूर्खता का फल भोगना ही चाहिए। मैंने ही तो उसे छूट दे रखी थी। यदि समय पर उससे फीस लेता रहता तो यह स्थिति पैदा न होती। अपराध मेरा भी है।"

और वह अदालत में नहीं गये।

आत्मा अमर है

उन दिनों गांधीजी जेल में थे और उनकी पत्नी श्रीमती कस्तूरबा गांधी फिनिक्स आश्रम में बीमार पड़ी हुई थीं। अचानक उनकी अवस्था चिन्ताजनक हो उठी। मि० वेस्ट ने, जो उस समय वहां थे, गांधीजी को तार दिया। उनके उत्तर में उन्होंने श्रीमती कस्तूरबा को एक पत्र लिखा। उस समय उनकी आयु चालीस वर्ष की रही होगी।

"तुम्हारी तबीयत के बारे में मि० वेस्ट ने तार भेजा है। मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। मैं रो रहा हूं। परन्तु ऐसी स्थिति नहीं है कि तुम्हारी सेवा करने आ सकूं। सत्याग्रह की लड़ाई में मैंने सबकुछ अर्पण कर दिया है। मैं वहां आ ही नहीं सकता हूं। जुर्माना देकर ही आ सकता हूं और जुर्माना दिया नहीं जा सकता। तुम ज़रा हिम्मत रखो और ठीक से खाओ-पीओ तो ठीक हो जाओगी। फिर भी यदि मेरे भाग्य में यही लिखा होगा कि तुम चली जाओ, तो मैं इतना ही लिखता हूं कि तुम वियोग सहकर भी मेरे जीतेजी चली जाओगी तो बुरा नहीं होगा। तुम पर मेरा प्रेम इतना अधिक है कि मरने पर भी तुम मेरे लिए जीवित ही रहोगी। तुम्हारी आत्मा तो अमर है। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि यदि तुम्हें जाना ही पड़ा तो तुम्हारे बाद मैं दूसरी शादी नहीं करूंगा। मैंने कभी तुमसे यह कहा भी है। तुम ईश्वर पर आस्था रखकर प्राण छोड़ना। तुम मरोगी तो यह भी सत्याग्रह

को शोभा देनेवाला ही होगा। मेरी लड़ाई सिर्फ राजनैतिक नहीं है, धार्मिक भी है, इसलिए अत्यन्त शुद्ध है। इसमें मरे तो क्या, और जीए तो क्या। आशा है, तुम भी यही सोचकर ज़रा भी दुख नहीं मानोगी। ऐसा वचन मैं तुमसे चाहता हूं।"

× × ×

ऊपर की घटना को पांच वर्ष बीत गए। एक दिन गांधीजी फिनिक्स-आश्रम में खेती का काम कर रहे थे, तभी डाक आई। डाक में एक तार था। उसे उन्होंने पढ़ा और ऐसे रख दिया, जैसे उसका कोई विशेष महत्व ही न हो। दिन बीत गया। उनका कोई भी साथी कुछ नहीं जान सका। रात की प्रार्थना के बाद महत्व-पूर्ण समाचारों की चर्चा होनी थी। उस समय गम्भीर होकर मर्मस्पर्शी शब्दों में उन्होंने कहा, "मुझपर बहुत बड़ी विपत्ति आ पड़ी है। कल मेरे भाई की मृत्यु हो गई। मैं समझता हूं, अन्त तक वह मेरा ही विचार करते रहे थे। मुझसे मिलने की उनकी उत्कट इच्छा थी। मैं भी इसीलिए अपना काम जल्दी ही समाप्त करके हिन्दुस्तान जाना चाहता था, जिससे उनके चरणों में प्रणाम करूं और सेवा-शुश्रूषा करूं। परन्तु होना कुछ और ही था!"

इस घटना की चर्चा करते हुए उन्होंने अपने एक साथी को लिखा, "ऐसे आघातों से मनुष्य में मृत्यु के प्रति अधिक निर्भयता आ जाती है। इस घटना से मेरे दिल में इतनी खलबली क्यों मचनी चाहिए? ऐसे शोक में स्वार्थ की छाया है। यदि मैं मृत्यु के लिए तैयार होऊं और मृत्यु को स्वागत योग्य समझूं तो मेरे भाई का मर जाना कोई आपत्ति नहीं है। मृत्यु से हमें डर लगता है, इस-लिए हम औरों की मृत्यु पर रोते हैं। शरीर नाशवान है और

आत्मा अमर है। उसके अलग होने पर शोक कैसे कर सकता हूं? परन्तु इस सुन्दर और आश्वासनपूर्ण सिद्धान्त में सच्चा विश्वास हो, तभी यह स्थिति प्राप्त होती है।"

: ४ :

कसूर तुम्हारा नहीं, मेरा है

एक बार दक्षिण अफ्रीका में कुछ युवक एक महीने तक बिना नमक का भोजन करने की प्रतिज्ञा लेकर फिनिक्स-आश्रम में भर्ती हुए। लेकिन शीघ्र ही वे इस सादे भोजन से उकता गये। एक दिन उन्होंने डरबन से खाने की मसालेदार और स्वादिष्ट चीजें मंगवाईं और चुपचाप खा लीं। बाद में उन्हींमें से एक युवक ने, जिसने वे चीजें खाई थीं, इस बात की सूचना गांधीजी को दे दी।

शाम की प्रार्थना में गांधीजी ने उन्हें एक-एक करके बुलाया और पूछा, "क्या तुमने वह खाना खाया?"

सबने स्पष्ट इन्कार कर दिया। इतना ही नहीं, उन्होंने सूचना देनेवाले को झूठा ठहराया।

इसपर गांधीजी बड़े जोर से अपने गालों को पीटने लगे और बोले, "मुझसे सच्चाई छिपाने में कसूर तुम्हारा नहीं, मेरा है, क्योंकि अभी तक मैंने सत्य का गुण प्राप्त नहीं किया है। सत्य मुझसे दूर भागता है।"

वह अपनेको ताड़ना देते ही रहे। यह स्थिति कबतक बर्दाश्त

की जा सकती थी! सारे युवक एक-एक करके उनके सामने आये और उन्होंने अपना अपराध स्वीकार कर लिया।

: ५ :

आटा पीसना तो अच्छा है

गांधीजी ने जब दक्षिण अफ्रीका में आश्रम खोला था तब उनके पास जो कुछ भी अपना था, सब दे दिया था। स्वदेश लौटे तो कुछ भी साथ नहीं लाये। सबका वहीं ट्रस्ट बना दिया और ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि उसका उपयोग सार्वजनिक कार्य के लिए होता रहे।

भारत लौटने पर पैतृक सम्पत्ति का प्रश्न सामने आया। पोरबन्दर और राजकोट में उनके घर थे। उनमें गांधी-वंश के दूसरे लोग रहते थे। उन सबको बुलाकर गांधीजी ने कहा, "पैतृक सम्पत्ति में मेरा जो कुछ भी हिस्सा है, उसे मैं आपके लिए छोड़ता हूं।"

वह केवल कहकर ही नहीं रह गये, लिखा-पढ़ी करवाने के बाद अपने चारों पुत्रों के हस्ताक्षर भी उन कागजों पर करवा दिये। इस प्रकार वे कानूनी हो गये।

गांधीजी की एक बहन भी थीं। उनका नाम रलियातबहन था, लेकिन सब उनको 'गोकीबहन' कहकर पुकारते थे। उनके परिवार में कोई भी नहीं था। प्रश्न उठा कि उनका खर्च कैसे चले। अपने निजी काम के लिए गांधीजी किसीसे कुछ नहीं

मांगते थे। फिर भी उन्होंने अपने पुराने मित्र डा० प्राणजीवन-दास मेहता से कहा कि वह गोकीबहन को दस रुपये मासिक भेज दिया करें।

भाग्य की विडम्बना देखिए! कुछ दिन बाद गोकीबहन की लड़की भी विधवा हो गई और मां के साथ आकर रहने लगी। उस समय बहन ने गांधीजी को लिखा, "अब मेरा खर्च बढ़ गया है। उसे पूरा करने के लिए हमें पड़ोसियों का अनाज पीसना पड़ता है।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "आटा पीसना बहुत अच्छा है। दोनों का स्वास्थ्य ठीक रहेगा। हम भी आश्रम में आटा पीसते हैं। तुम्हारा जब जी चाहे, तुम दोनों आश्रम में आ सकती हो और जितनी जन-सेवा कर सको, उतना करने का तुम्हें अधिकार है। जैसे हम रहते हैं, वैसे ही तुम भी रहोगी। मैं घर पर कुछ नहीं भेज सकता और न अपने मित्रों से ही कह सकता हूं।"

: ६ :

अब तू मेरी विवाहिता नहीं रही

दक्षिण अफ्रीका में एक दिन श्रीमती कस्तूरबा गांधी रसोई-घर में खाने की कोई चीज़ बना रही थीं। गांधीजी कुछ और काम कर रहे थे। सहसा उन्होंने कस्तूरबा से पूछा, "तुझे पता चला या नहीं?"

बा उत्सुक स्वर में बोलीं, "क्या?"

गांधीजी ने हँसते हुए कहा, "आजतक तू मेरी विवाहिता पत्नी थी, लेकिन अब नहीं रही।"

बा ने चकित होकर उनकी ओर देखा। पूछा, "ऐसा किसने कहा है? आप तो रोज नई-नई बातें खोज निकालते हैं।"

गांधीजी बोले, "मैं कहां खोज निकालता हूं! वह जनरल स्मट्स कहता है कि ईसाई विवाहों की तरह हमारा विवाह सरकारी अदालत के रजिस्टर में दर्ज नहीं हुआ है, इसलिए वह गैर-कानूनी माना जायगा और तू मेरी विवाहिता पत्नी नहीं, बल्कि रखैल मानी जायगी।"

बा का चेहरा तमतमा उठा। बोलीं, "उसका सिर! उस निठल्ले को तो ऐसी ही बातें सूझा करती हैं!"

गांधीजी ने पूछा, "लेकिन अब तुम स्त्रियां क्या करोगी?"

बा बोलीं, "आप ही बताइये, हम क्या करें?"

गांधीजी तो यह सुनने के लिए तैयार बैठे थे। तुरन्त बोले, "हम पुरुष जिस तरह सरकार से लड़ते हैं वैसे ही तुम स्त्रियां भी लड़ो। अगर तुम्हें विवाहिता पत्नी बनना हो और अपनी आबरू प्यारी हो तो तुम्हें भी हमारी तरह सत्याग्रह करके जेल जाना चाहिए।"

बा ने अचरज से कहा, "मैं जेल जाऊं! औरतें भी कभी जेल जा सकती हैं?"

गांधीजी एकाएक गम्भीर हो उठे। बोले, "औरतें जेल क्यों नहीं जा सकतीं? पुरुष जो सुख-दुख भोगेंगे वे स्त्रियां क्यों नहीं भोग सकतीं? राम के साथ सीता, हरिश्चन्द्र के साथ तारामती और नल के साथ दमयन्ती—इन सभीने वनों में अपार दुःख

सहे थे।"

बा बोलीं, "वे सब तो देवताओं-जैसे थे। उतनी शक्ति हममें कहां है!"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "हम भी उनके जैसा आचरण करें तो देवता बन सकते हैं। मैं राम बन सकता हूं और तू सीता बन सकती है। सीता राम के साथ न गई होती, तारा हरिश्चन्द्र के साथ न बिकी होती और दमयन्ती ने नल के साथ कष्ट न उठाए होते तो उन्हें कोई भी सती न कहता।"

यह सुनकर बा कुछ देर चुप रहीं। फिर बोलीं, "तो मुझे आपको जेल में भेजना ही है। जाऊंगी, जेल में भी जाऊंगी। लेकिन जेल का खाना क्या मुझे अनुकूल आयगा?"

गांधीजी बोले, "जेल का खाना अनुकूल न आवे तो वहां फलों पर रहना।"

बा ने पूछा, "जेल में सरकार मुझे फल खाने को देगी?"

गांधीजी ने कहा, "न दे तो तू उपवास करना।"

यह सुनकर बा हँस पड़ीं और बोलीं, "ठीक है, यह मुझे आपने अच्छा मरने का रास्ता बता दिया। लगता है कि अगर मैं जेल गई तो ज़रूर मर जाऊंगी।"

गांधीजी खिलखिला पड़े और कहा, "हां-हां, तू जेल में जाकर मरेगी तो मैं जगदम्बा की तरह तेरी पूजा करूंगा।"

बा दृढ़ स्वर में बोलीं, "अच्छा, तब तो मैं जेल जाने को तैयार हूं।"

चालीस के चालीस हज़ार हो जायंगे

गांधीजी उस समय फिनिक्स-आश्रम में रहते थे। दक्षिण अफ्रीका की सरकार से अन्तिम संघर्ष आरम्भ ही होनेवाला था। तभी एक रात को प्रार्थना के बाद उनके एक साथी रावजी-भाई मणिभाई पटेल ने कहा, "बापूजी, डरवन में आज मैं खूब घूमा, परन्तु सत्याग्रह के बारे में मुझे कोई उत्साह नहीं दिखाई दिया। इसके विपरीत अधिकांश लोगों में इसके प्रति अश्रद्धा ही भरी हुई है। बहुत-से लोग कहते हैं कि गांधीभाई व्यर्थ ही पेट दबाकर दर्द पैदा कर रहे हैं। सिद्धान्त और मानापमान की बात छोड़कर जो कुछ हम पैदा करते हैं, उसे करने दें तो बहुत अच्छा। यदि हम गोरों के साथ संघर्ष करेंगे तो वे हमें और भी दुख देंगे। आज जैसी स्थिति है, उसमें रहना ही क्या अच्छा नहीं होगा? ज़रा मूंछ नीची रखकर चल लेंगे। यहां हम रुपया कमाने के लिए आये हैं, बर्बाद होने के लिए नहीं। स्वाभिमान की रक्षा के लिए जेल में जाना होता तो हम यहां किसलिए आते?...बापूजी, ऐसी साफ-साफ बातें बहुत-से लोगों ने मुझसे कहीं। मैं इससे बहुत दुखी हुआ हूं। सच तो यह है कि सरकार से लड़ने के लिए हमारे पास कितनी शक्ति है? हम साथ-साथ संघर्ष कर रहे हैं। हमें उससे कितनी शक्ति प्राप्त हुई? क्या आपने कभी हिसाब लगाया है कि इतनी बड़ी सरकार से लड़ने के लिए हमारे पास कितने आदमी हैं?"

गांधीजी हँसे और बोले, "मैं तो रात-दिन हिसाब लगाता रहता हूं, फिर भी चाहो तो तुम गिन सकते हो। सभी तो हमारे परिचित हैं।"

रावजीभाई ने गिनना शुरू किया। संख्या चालीस पर आकर ठहर गई। उन्होंने कहा, "बापूजी, ऐसे चालीस व्यक्ति हैं।"

गम्भीर स्वर में गांधीजी ने पूछा, "परन्तु ये चालीस योद्धा कैसे हैं ?"

रावजीभाई पटेल इस प्रश्न का अर्थ समझते थे। बोले, "ये चालीस तो ऐसे हैं, जो अन्त तक जूझेंगे। वे जीकर भी जीतेंगे और मरकर भी जीतेंगे।"

यह सुनकर गांधीजी बोल उठे, "बस, ऐसे चालीस सत्याग्रही योद्धा—प्राणों की बाजी लगाकर अन्त तक जूझनेवाले चालीस सत्याग्रही योद्धा—काफी हैं। तुम देख लेना, ऐसे चालीस योद्धाओं के चालीस हजार योद्धा हो जायंगे।"

यह कहते हुए गाधीजी बहुत ही भावावेश से भर उठे। उनके रोंगटे खड़े हो गये। उसी स्वर में वह फिर बोले, "ये चालीस भी न हों तो मैं अकेला ही गोखले के अपमान का बदला लेने को काफी हूं। कितनी ही बड़ी सल्तनत क्यों न हो, गोखले के साथ विश्वासघात करनेवाले के विरुद्ध मैं अकेला ही संघर्ष करूंगा। जबतक गोखले को दिया गया वचन पूरा नहीं किया जाता तबतक पागल बनकर मैं गोरों का द्वार खटखटाऊंगा। गोखले का अपमान हो ही कैसे सकता है ? यह कैसे सहन हो सकता है ?"

मेरे घर में यह कलह नहीं चल सकता

गांधीजी डरबन में वकालत करते थे। उनके मुंशी भी प्रायः उन्हींके साथ रहते थे। उनमें हिन्दू, ईसाई, गुजराती, मद्रासी, सभी धर्म और प्रान्तों के व्यक्ति होते थे। गांधीजी उनके साथ किसी तरह का भेद-भाव नहीं रखते थे। उन्हें अपने परिवार के रूप में ही मानते थे।

जिस घर में वह रहते थे, उसकी बनावट पश्चिमी ढंग की थी। कमरों में नालियां नहीं थीं। पेशाब के लिए खास तरह के बरतन रखे जाते थे। उन्हें नौकर नहीं उठाते थे। यह काम घर के मालिक और मालकिन करते थे। जो मुंशी घर में घुल-मिल जाते थे, वे अपने बरतन स्वयं ही उठा ले जाते थे।

एक बार एक ईसाई मुंशी उनके घर में रहने के लिए आया। उसका बरतन घर के मालिक या मालकिन को ही उठाना चाहिए था। लेकिन कस्तूरबा गांधी ने इस मुंशी का बरतन उठाने से इन्कार कर दिया। वह मुंशी पंचम कुल में पैदा हुआ था। उसका बरतन बा कैसे उठातीं! गांधीजी स्वयं उठावें, यह भी वह नहीं सह सकती थीं। इस बात को लेकर दोनों में काफी झगड़ा हुआ। बा बरतन उठाकर ले तो गईं, लेकिन क्रोध और ग्लानि से उनकी आंखें लाल हो आईं। गांधीजी को इस तरह बरतन उठाने से सन्तोष नहीं हुआ। वह चाहते थे कि बा हँसते-हँसते बरतन ले जायं, इसलिए उन्होंने ऊंचे स्वर में कहा, "मेरे घर में यह कलह

नहीं चल सकता।"

ये शब्द बा के हृदय में तीर की तरह चुभ गए। वह तड़प-कर बोलीं, "तो अपना घर अपने पास रखो। मैं जाती हूं।"

गांधीजी भी कठोर हो उठे। क्रोध में भरकर उन्होंने बा का हाथ पकड़ा और दरवाजे तक खींचकर ले गए। वह उन्हें बाहर कर देना चाहते थे, लेकिन जैसे ही उन्होंने दरवाजा खोला अश्रु-धारा बहाती हुई बा बोलीं, "तुमको तो शर्म नहीं है, लेकिन मुझे है। जरा तो शरमाओ। मैं बाहर निकलकर कहां जाऊं! यहां मेरे मां-बाप भी नहीं हैं, जो उनके घर चली जाऊं। मैं स्त्री ठहरी। तुम्हारी धौंस मुझे सहनी होगी। अब शर्म करो और दरवाजा बन्द कर दो। कोई देख लेगा तो दोनों का ही मुंह काला होगा।"

यह सुनकर मन-ही-मन गांधीजी बहुत लज्जित हुए। उन्होंने दरवाजा बंद कर दिया। सोचा—अगर पत्नी मुझे छोड़कर कहीं नहीं जा सकती तो मैं भी उसे छोड़कर कहां जानेवाला हूं!

: ९ :

मैं तुमको अंग्रेज़ी पढ़ाऊंगा

एक बार दक्षिण अफ्रीका में एक मुसलमान बटलर गांधीजी के पास आया। बोला, "गांधीभाई, मुझे बहुत थोड़ी तनख्वा मिलती है। बाल-बच्चेदार आदमी हूं। उतने में गुजारा नहीं होता। अगर मुझे थोड़ी-सी अंग्रेज़ी आ जाय तो ज्यादा तनख्वा

मिल सकती है।"

गांधीजी उन दिनों बैरिस्टर थे। उन्होंने क्षणभर सोचा और फिर मन-ही-मन निश्चय करके जवाब दिया, "अच्छा, मैं तुमको अंग्रेज़ी पढ़ाऊंगा।"

बटलर चकित होकर गांधीजी की तरफ देखने लगा। विलायती ठाठ से रहनेवाला यह बैरिस्टर मुझे अंग्रेज़ी सिखायेगा! उसे बहुत खुशी हुई, लेकिन उसके सामने एक और समस्या थी। उसने वह समस्या भी गांधीजी के सामने रखी और कहा, "आप मुझे पढ़ायेंगे, यह तो ठीक है, लेकिन नौकरी से समय निकालकर मैं यहां जल्दी कैसे आ सकता हूं?"

गांधीजी ने तुरन्त उत्तर दिया, "तुम इसकी फिकर मत करो। मैं तुम्हारे घर आकर पढ़ाया करूंगा।"

बटलर की आंखें कृतज्ञता से भीग आईं।

बैरिस्टर गांधी प्रतिदिन चार मील पैदल चलकर उसको अंग्रेज़ी पढ़ाने के लिए जाते और फिर उसी प्रकार घर वापस लौटते। यह एक-आध दिन की बात नहीं थी। पूरे आठ महीने तक यही क्रम चलता रहा।

: १० :

प्रतिज्ञा वापस नहीं ली जाती

एक बार कस्तूरबा गांधी बहुत बीमार हो गईं। जल-चिकित्सा से उन्हें कोई लाभ नहीं हुआ। दूसरे उपचार किये गए। उनमें

भी सफलता नहीं मिली। अंत में गांधीजी ने उन्हें नमक और दाल छोड़ने की सलाह दी। परन्तु इसके लिए बा तैयार नहीं हुई।

गांधीजी ने बहुत समझाया, पोथियों से प्रमाण पढ़कर सुनाए, लेकिन सब व्यर्थ। बा बोलीं, "कोई आपसे कहे कि दाल और नमक छोड़ दो तो आप भी नहीं छोड़ेंगे।"

गांधीजी ने तुरन्त प्रसन्न होकर कहा, "तुम गलत समझ रही हो। मुझे कोई रोग हो और वैद्य किसी वस्तु को छोड़ने के लिए कहें तो तुरन्त छोड़ दूंगा और तुम कहती हो तो मैं अभी एक साल के लिए दाल और नमक दोनों छोड़ता हूं, तुम छोड़ो या न छोड़ो, यह अलग बात है।"

यह सुनकर बा बहुत दुखी हुईं। बोलीं, "आपका स्वभाव जानते हुए भी मेरे मुंह से यह बात निकल गई। अब मैं दाल और नमक नहीं खाऊंगी। आप अपनी प्रतिज्ञा वापस ले लें।"

गांधीजी ने कहा, "तुम दाल और नमक छोड़ दोगी, यह बहुत अच्छा होगा। उससे तुम्हें लाभ ही होगा, लेकिन की हुई प्रतिज्ञा वापस नहीं ली जाती। किसी भी निमित्त से संयम पालन करने पर लाभ ही होता है। मुझे भी लाभ ही होगा। इसलिए तुम मेरी चिन्ता मत करो।"

गांधीजी अपन प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहे।

देश-सेवा की ओर पहला कदम

गांधीजी ने साबरमती में आश्रम खोला ही था। एक भाई उनसे मिलने आये। वह बहुत अच्छी अंग्रेजी जानते थे और मानते थे कि बढ़िया अंग्रेज़ी में लेख लिखना देश की सेवा करना है। उन्होंने गांधीजी से कहा, "मेरे योग्य कोई काम हो तो बताइये।"

उनका विचार था कि गांधीजी उनसे अंग्रेज़ी में लेख लिखने के लिए कहेंगे, पर बात कुछ और ही हुई। उस समय गांधीजी गेहूं साफ कर रहे थे। उन्होंने कहा, "वाह, यह तो बहुत अच्छी बात है। ये गेहूं बीनने हैं। आप मदद करेंगे ?"

वह भाई सकपका गये। अच्छा नहीं लगा, परन्तु मना भी कैसे करते! बोले, "अवश्य मदद करूंगा।"

वह गेहूं बीनने लगे। ऊपर से शान्त, पर मन में सोच रहे थे कि कहां आ फंसा! गांधीजी कैसे हैं? इतनी बढ़िया अंग्रेजी जाननेवाले से गेहूं बिनवाते हैं! किसी तरह राम-राम करके उसने घंटा पूरा किया। फिर बोला, "बहुत समय हो गया, अब जाना चाहता हूं।"

गांधीजी ने कहा, "बस, घबरा गये ?"

उसने कहा, "नहीं, घबराया तो नहीं, पर घर पर ज़रूरी काम है।"

गांधीजी ने पूछा, "क्या काम है ?"

वह भाई बोले, "जी, रात को खाने में देर हो जाती है, इससे

सन्ध्या को नाश्ता कर लेता हूं, उसीका समय हो रहा है।"

गांधीजी हंस पड़े। बोले, "इसके लिए घर जाने की कोई जरूरत नहीं है। हमारा भोजन भी बस तैयार होनेवाला है। हमें भी एक बार अपने साथ भोजन करने का मौका दीजिये। हमारी नमक-रोटी आपको पसन्द होगी न? मैं काम में लगा हुआ था। आपसे बातें नहीं कर सका। माफ करें, अब खाते समय बातें भी कर लेंगे।"

वह भाई क्या करते! रुकना पड़ा। कुछ देर में खाने का समय हो गया। भोजन एकदम सादा। रूखी रोटी, चावल और दाल का पानी। न घी, न अचार, न मिर्च, न मसाले। बापू ने उन भाई को अपने पास बैठाया। बड़े प्यार से खाना परोसा। भोजन शुरू होते ही बातें भी शुरू हो गईं, पर उन भाई की बुरी हालत थी। वह ठहरे मेवा-मिठाई से नाश्ता करनेवाले और वहां थी रूखी रोटी। एक टुकड़ा मुंह में दें और एक घूंट पानी पियें। तब भी एक रोटी पूरी न खा सके।

इतने पर भी छुट्टी मिल जाती तो ग़नीमत थी। वहां तो अपने बरतन आप मांजने का नियम था। जैसे-तैसे वह काम भी किया। तब कहीं जाकर जाने का अवसर आया। जाते समय गांधीजी ने उनसे कहा, "आप देश की सेवा करना चाहते हैं, यह अच्छी बात है। आपके ज्ञान और आपकी सूझ-बूझ का अच्छा उपयोग हो सकता है। लेकिन इसके लिए शरीर का निरोग और मजबूत होना जरूरी है। आप अभी से उसकी तैयारी करें। यही आपका देश-सेवा की ओर पहला कदम होगा।"

मैं तुझसे डर जाता हूं

साबरमती-आश्रम में रसोईघर का दायित्व श्रीमती कस्तूरबा गांधी के ऊपर था। प्रतिदिन अनेक अतिथि गांधीजी से मिलने के लिए आते थे। बा बड़ी प्रसन्नता से सबका स्वागत-सत्कार करती थीं। त्रावनकोर का रहनेवाला एक लड़का उनकी सहायता करता था।

एक दिन दोपहर का सारा काम निपटाने के बाद रसोईघर बन्द करके बा थोड़ा आराम करने के लिए अपने कमरे में चली गईं। गांधीजी मानो इसी क्षण की राह देख रहे थे। बा के जाने के बाद उन्होंने उस लड़के को अपने पास बुलाया और बहुत धीमे स्वर में कहा, "अभी कुछ मेहमान आनेवाले हैं। उनमें पं० मोतीलाल नेहरू भी हैं। उन सबके लिए खाना तैयार करना है। बा सुबह से काम करते-करते थक गई हैं। उन्हें तो आराम करने दे और अपनी मदद के लिए कुसुम को बुला ले। और देख, जो चीज जहां से निकाले, उसे वहीं रख देना।"

लड़का कुसुमबहन को बुला लाया और दोनों चुपचाप अतिथियों के लिए खाना बनाने की तैयारी करने लगे। काम करते-करते अचानक एक थाली लड़के के हाथ से नीचे गिर गई। उसकी आवाज से बा की आंख खुल गई। सोचा, रसोईघर में बिल्ली घुस आई है। वह तुरन्त उठ कर वहां पहुंचीं, लेकिन वहां तो कुछ और ही दृश्य था। बड़े जोरों से खाना बनाने की तैयारियां चल

रही थीं। वह चकित भी हुई और गुस्सा भी आया। ऊंची आवाज़ में उन्होंने पूछा, "तुम दोनों ने यहां यह सब क्या धांधली मचा रखी है ?"

लड़के ने बा को सब कहानी कह सुनाई। इसपर वह बोलीं, "तुमने मुझे क्यों नहीं जगाया ?"

लड़के ने तुरन्त उत्तर दिया, "तैयारी करने के बाद आपको जगानेवाले थे। आप थक गई थीं, इसलिए शुरू में नहीं जगाया।"

बा बोलीं, "पर तू भी तो थक गया था। क्या तू सोचता है, तू ही काम कर सकता है, मैं नहीं कर सकती ?"

और बा भी उनके साथ काम करने लगीं। शाम को जब सब अतिथि चले गये तब वह गांधीजी के पास गईं और उलहना देते हुए बोलीं, "मुझे न जगाकर आपने इन बच्चों को यह काम क्यों सौंपा ?"

गांधीजी जानते थे कि बा को क्रोध आ रहा है। इसलिए हंसते-हंसते उन्होंने उत्तर दिया, "क्या तू नहीं जानती कि तू गुस्सा होती है तब मैं तुझसे डर जाता हूं ?"

बा बड़े जोर से हंस पड़ीं, मानों कहती हों—"आप और मुझसे डरते हैं !"

मैं नहीं मरूंगा

सन् १९३३ में गांधीजी यरवदा-जेल में थे। उस समय हरिजन-कार्य को लेकर उन्होंने इक्कीस दिन का उपवास करने का निश्चय किया था। एक दिन पांच बजे खबर आई कि कोई हरिजन बालक उनसे मिलना चाहता है। समय नहीं था, लेकिन बेचारा लड़का कई घंटों से दरवाजे पर बैठा बाट जोह रहा था। वह पांच महीने पहले भी आया था। उस समय उसने गांधीजी से छात्रवृत्ति मांगी थी। गांधीजी ने उसे वचन दिया था कि यदि वह कालेज के प्रिंसिपल का प्रमाण-पत्र ले आयेगा तो मदद के लिए विचार करेंगे।

अब वह परीक्षा पास करके और प्रिंसिपल का प्रमाणपत्र लेकर आया था। जेल में मिलने आने के लिए उसने चप्पल की जोड़ी खरीदी थी। बड़ी मुसीबत उठाकर उसने ये पैसे इकट्ठे किये थे।

महादेवभाई ने गांधीजी से कहा कि वह लड़का एक मिनट से ज्यादा नहीं लेगा। वह इतना ही आश्वासन चाहता है कि ठक्करबापा उसकी बात पर ध्यान देकर उसकी मदद करें।

वह लड़का आया। अपने साथ वह फूल लाया था। उन्हें उसने गांधीजी के चरणों में रखा, लेकिन जब गांधीजी ने उसे उसकी बात ठक्करबापा तक पहुंचाने का आश्वासन दिया तो उसने कहा, "मैं दूसरों पर विश्वास नहीं करता। मेरा तो आप

ही पर विश्वास है।"

गांधीजी बोले, "अगर मेरे साथी इतने अप्रामाणिक हैं तो मैं सबसे ज्यादा अप्रामाणिक ठहरा। तुम्हें मुझपर भी विश्वास नहीं रखना चाहिए।"

यह सुनकर लड़का रो पड़ा। हिचकियां भरते हुए बोला, "आप हमें छोड़कर जाने के लिए किसलिए तैयार हो गये हैं? आप ही कहते हैं कि आपके साथी अपवित्र हैं। आपके आसपास पवित्रता का वायुमण्डल नहीं है, और इसलिए आप उपवास करना चाहते हैं।"

गांधीजी ने कहा, "तुम जो यह कहते हो कि मैं तुम्हें छोड़कर जा रहा हूं, सो मैं नहीं जाऊंगा।"

लड़का बोला, "मैं कैसे मानूं?"

गांधीजी ने कहा, "मैं तुमसे भरोसे के साथ कहता हूं कि मैं नहीं मरूंगा। चलो, हमारे बीच करार हुआ। सोमवार २९ मई को दोपहर के समय तुम नारंगी लेकर आना। मैं उसके रस से उपवास तोड़ूंगा। बाद में हम तुम्हारी छात्रवृत्ति के बारे में बात करेंगे। बोलो, अब तो तुम्हें संतोष है?"

लड़के के चेहरे पर हर्ष चमक आया। उसके आंसू सूख गये। बोला, "हां, बापू, संतोष है।"

गुस्सा आ जाय तो शांत हो जाओ

यरवदा-जेल के जेलर मि० क्वीन आयरलैण्ड के निवासी थे। वह प्रतिदिन सन्ध्या के समय गांधीजी और उनके साथियों के कुशल समाचार जानने के लिए आया करते थे। एक दिन उन्होंने गांधीजी से कहा, "मैं गुजराती सीखना चाहता हूं।"

गांधीजी बोले, "अच्छी बात है। मैं तुमको गुजराती सिखाऊंगा।"

उस दिन से वह प्रतिदिन उनसे गुजराती की बालपोथी पढ़ने लगे। कई दिन बीत गये। जब क्वीन कुछ लिखना-पढ़ना सीख गये तब उन्होंने गांधीजी से कहा, "गुजराती लिखावट मैं बार-बार पढ़ सकूं, इसलिए आप कोई वाक्य एक कागज पर लिख दीजिये।"

गांधीजी ने तुरन्त एक वाक्य लिख दिया—"कैदियों पर प्रेम करो और अगर किसी कारण गुस्सा आ भी जाय तो गम खाकर शान्त हो जाओ।"

इसके बाद क्वीन विसापुर जेल के सुपरिन्टेन्डेन्ट होकर वहां से चले गये। उनके कार्यकाल में गुजरात के बहुत-से राजनैतिक कैदी वहां आये। किसी बातको लेकर एक बार क्वीन का उनसे संघर्ष हो गया। वह अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे। गोली चलाने तक की स्थिति पैदा हो गई। गांधीजी का लिखा हुआ कागज वह हमेशा अपने साथ रखते थे। सहसा उन्हें उस कागज की याद

आई। उन्होंने उस वाक्य को बार-बार पढ़ा। जैसे-जैसे वह उस वाक्य को पढ़ते, उनका मन शान्त होता जाता। अन्त में तो उन्होंने सत्याग्रहियों से माफी मांग ली।

: १५ :

दातुन सूखे न तबतक फेंक नहीं सकते

यरवदा-जेल में गांधीजी के साथ रहने के लिए काकासाहब कालेलकर को भेजा गया था। वहां सब लोग नित्यप्रति नियम से कातते थे। काकासाहब भी कातते थे। उन्हें वहां पांच महीने से अधिक रहना था। उनके पास इतनी पूनियां थीं कि बाहर से मंगवाने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

उस समय सरदार वल्लभभाई पटेल भी यरवदा-जेल में लाये गये। वह गांधीजी के साथ नहीं रहते थे। बीच में एक दीवार थी। वे कभी-कभी एक-दूसरे की आवाज सुन सकते थे। मिल नहीं सकते थे। गांधीजी यह सब देखकर बहुत दुखी होते थे। जब-जब वह आंगन में टहलते, उनका मन बार-बार दीवार के उस पार चला जाता था।

एक दिन जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट सरदार वल्लभभाई की चिट्ठी लेकर आये। सरदार ने लिखा था, "मेरी सब पूनियां खत्म हो गई हैं। आपके पास कुछ हों तो भेज दीजिये।"

सरदार सूत खूब कातते थे। गांधीजी ने काकासाहब से पूछा, "तुम्हारे पास पूनियां हैं ?"

काकासाहब ने उत्तर दिया, "बहुत हैं, लेकिन मैं उन्हें कैसे दे सकता हूं ? मुझे धुनकना तो आता ही नहीं।"

बापू बोले, "वह मैं तुम्हें सिखा दूंगा, नहीं तो पूनियां बना दूंगा।"

काकासाहब ने सब पूनियां सरदार के पास भेज दीं और बापू से धुनकने की कला सीखने लगे। थोड़े ही दिनों में वह सिद्ध-हस्त हो गये, लेकिन इतने में वर्षा ऋतु आ गई। हवा में नमी के कारण तांत ढीली हो जाती थी। धूप निकलने पर वे लोग पींजन को और रुई को उसमें रखने लगे, लेकिन वर्षा इतनी होती थी कि धूप के दर्शन बड़ी कठिनता से होते थे। तभी काकासाहब ने देखा कि आंगन में डबलरोटी पकाने की भट्टी है। वे अपनी पींजन और रुई भट्टी के पास रखने लगे। इससे तांत तो सूख जाती थी, लेकिन उसपर उठे हुए तंतुओं को बैठाना बड़ा कठिन था। सहसा एक उपाय सूझा कि उसपर कड़वे नीम के पत्ते घिसे जायं तो तंतु बैठ सकते हैं।

जेल में नीम के बहुत पेड़ थे। काकासाहब प्रतिदिन एक टहनी तोड़ लेते थे। गांधीजी ने जब देखा तो वह बोले, "यह तो हिंसा है। और लोग इस बात को न समझ सकें, लेकिन तुम तो आसानी से समझ सकते हो। चार पत्ते भी पेड़ से क्षमा मांगकर तोड़ने चाहिए। तुम तो पूरी टहनी तोड़ लेते हो।"

उस दिन से काकासाहब ने टहनी तोड़ना बन्द कर दिया। जरूरत के हिसाब से कुछ पत्ते ही तोड़ने लगे। लेकिन तभी बाहर से दातुन मिलनी बंद हो गई। काकासाहब बोले, "कोई बात नहीं, यहां तो नीम के पेड़ हैं। रोज ताजी दातुन मिल सकती है।"

गांधीजी ने यह बात स्वीकार कर ली। पहले दिन काकासाहब ने उन्हें जो दातुन लाकर दी, उसका इस्तेमाल करने के बाद गांधीजी ने उनसे कहा, "अब इसका कूचीवाला भाग काट डालो। कल इसी दातुन का फिर उपयोग हो सकता है।"

काकासाहब ने कहा, "यहां तो रोज़ ताजी दातुन मिल सकती है।"

बापू बोले, "सो तो मैं जानता हूं, लेकिन हमें उसका अधिकार नहीं है। जबतक एक दातुन बिलकुल सूख न जाय तबतक उसे हम फेंक नहीं सकते।"

और जबतक वह दातुन सचमुच सूख नहीं गई, गांधीजी उसीका प्रयोग करते रहे।

: १६ :

इनपर आकाश से फूल बरसने चाहिए

यरवदा-जेल में एक बिल्ली थी। एक बार उसके दो बच्चे हुए। जैसे ही वे कुछ बड़े हुए कि तरह-तरह के खेल करके सबको रिझाने लगे। गांधीजी उन्हें देखकर बहुत खुश होते थे। वे भी धीरे-धीरे गांधीजी से इतना हिल-मिल गए कि प्रार्थना के समय उनकी गोद में आ बैठते या फिर उनके इधर-उधर चक्कर लगाने लगते, परन्तु वल्लभभाई उन्हें तार की जाली के नीचे बन्द करके आनन्द लेते।

एक दिन वल्लभभाई ने एक बच्चे को जाली के नीचे

बन्द कर दिया तो वह सिर पटकते-पटकते जाली बरामदे के सिरे तक ले गया और फिर बाहर निकल गया। यह सब उसने अपनी बुद्धि से ही किया।

कुछ दूर जाकर वह शौच की तैयारी करने लगा। जमीन खोदी और शौच करके उसे ढंका। वहां मिट्टी बहुत नहीं थी, इसलिए दूसरी जगह गया। वहां उसने यह क्रिया संतोषपूर्वक की और पहले की तरह उसे ढंकने लगा। दूसरे बच्चे ने भी इस काम में उसकी मदद की। गांधीजी यह सब देख रहे थे। बोले, "इन बच्चों पर आकाश से फूल बरसने चाहिए।"

: १७ :

गरीबी के व्रती ऐसी भेंट नहीं दे सकते

साबरमती-आश्रम में एक बार श्रीमती कस्तूरबा गांधी के कमरे में चोरी हो गई। चोर कपड़ों से भरी हुई दो पेटियां उठाकर ले गये। कपड़े उन्होंने निकाल लिये और पेटियां वहीं खेत में छोड़कर चले गये।

जब यह समाचार गांधीजी को मिला तो उन्होंने पूछा, "बा के पास दो पेटी-भर कपड़े कहां से आये? वह रोज बदल-बदलकर साड़ियां तो पहनती नहीं।"

बा ने कहा, "रामी और मनु[1] की मां तो भगवान के घर चली गई। लेकिन जब कभी ये बच्चियां मेरे पास आयंगी तो

[1]गांधीजी के सबसे बड़े पुत्र हरिलाल गांधी की पुत्रियां

उन्हें देने के लिए दो कपड़े तो मुझे चाहिए ही। इसी विचार से कुछ साड़ियां और खादी उन पेटियों में रख छोड़ी थीं।"

इस बात का विरोध करते हुए गांधीजी ने कहा, "हम कपड़ों का संग्रह नहीं कर सकते। पहनने के लिए जितने जरूरी हों उतने ही अपने पास रखे जा सकते हैं। उससे अधिक हों तो उन्हें आश्रम के कार्यालय में जमा करा देना चाहिए।"

गांधीजी इतना कहकर ही संतुष्ट नहीं हुए, उसी दिन सायं-काल की प्रार्थना के बाद उन्होंने सार्वजनिक रूप से इस विषय की चर्चा की और कहा, "हमारे जैसे लोगों को इस प्रकार का व्यवहार करने का अधिकार नहीं है। लड़कियां हमारे घर आवें तो वे रहें और खायें-पियें, लेकिन जिन्होंने गरीबी का व्रत लिया है, वे अपनी लड़कियों को ऐसी भेंट नहीं दे सकते।"

: १८ :

जो दूसरों पर आश्रित हैं वे नंगे ही हैं

गांधीजी बारडोली तहसील में थे। प्रतिदिन हजारों स्त्री-पुरुष उनके दर्शनों के लिए आते थे। एक दिन एक भद्र महिला उनके दर्शन करने आई। उसके हाथ में रूमाल से ढकी एक थाली थी। उस थाली में रुपये भरे हुए थे। महिला ने वह थाली उनके सामने रखकर बड़ी श्रद्धा से उन्हें प्रणाम किया।

गांधीजी ने एक क्षण उस महिला की ओर देखा। फिर गंभीर भाव से बोले, "तुम मेरे सामने इस प्रकार नंगी कैसे आईं ?"

यह सुनकर सब उपस्थित व्यक्ति स्तब्ध रह गये। महिला ने घबराकर अपने वस्त्रों पर एक दृष्टि डाली। कहीं से वे फटे तो नहीं रहे? सभी वस्त्र सुन्दर और नये थे। किसीकी कुछ समझ में नहीं आया। गांधीजी बोले, "मेरी बात का अर्थ तुम लोगों की समझ में नहीं आया। सबों की बुद्धि मानों जड़ हो गई है। इस बहन के सभी कपड़े विलायती हैं न? आज तुम सबकी लाज विलायती कपड़े ढंकते हैं। यदि कल को विलायत से कपड़ा नहीं आया तो तुम्हारी लाज कैसे ढंकी जायगी? जो दूसरे पर आश्रित रहते हैं, वे नंगे ही होते हैं। अपनी इज्जत को अपने हाथ से ही ढंकना चाहिए। अपने हाथ से कातकर खादी पहननी चाहिए।"

: १९ :

लेकिन सिर्फ नाक ही क्यों...

एक बार गांधीजी बारडोली में ठहरे हुए थे। किसीने उनके साथियों को सूचना दी कि एक हट्टा-कट्टा पहाड़ जैसा काबुली मस्जिद में आकर ठहरा है। उसकी हलचल कुछ रहस्यपूर्ण मालूम पड़ती है, क्योंकि वह गांधीजी के बारे में पूछता रहता है।

कहीं वह गांधीजी पर हमला न कर दे, इसलिए उनके साथियों ने मकान के आस-पास कंटीले तारों की जो आड़ लगी हुई थी, उसका दरवाजा बंद करके ताला लगा दिया। उसी रात वह काबुली उस दरवाजे के पास देखा गया। उसने अन्दर आने का प्रयत्न भी किया, लेकिन वहां पहरेदार थे, इसलिए सफल नहीं हो सका।

दूसरे दिन कुछ मुसलमान भाइयों ने आकर बताया, "वह काबुली पागल मालूम होता है। कहता है कि मैं गांधी की नाक काटूंगा।

यह सुनकर सब लोग और भी घबराए, लेकिन गांधीजी से किसीने कुछ नहीं कहा। वे उसी तरह अपना काम करते रहे। रात होने पर वह अपने स्वभाव के अनुसार खुले आकाश के नीचे सोने के लिए अपने बिस्तर पर पहुंचे। उन्होंने देखा कि उनको घेर-कर चारों ओर कुछ लोग सोए हुए हैं। उन्हें आश्चर्य हुआ। पूछा, "आप सब लोग तो बाहर नहीं सोते थे। आज यह क्या बात है?"

उन लोगों ने उस काबुली की कहानी कह सुनाई। सुन कर गांधीजी हँस पड़े और बोले, "आप मुझे बचानेवाले कौन हैं? भगवान ने मुझे यदि इसी तरह मारने का निश्चय किया है तो उसे कौन रोक सकेगा? जाइये, आप लोग अपने रोज के स्थान पर सोइये।"

गांधीजी के आदेश की उपेक्षा भला कौन कर सकता था! सब लोग चले गये, परन्तु सोया कोई नहीं। वह काबुली पहली रात की तरह आज भी आया, लेकिन अन्दर नहीं आ सका। फिर सवेरा हुआ। प्रार्थना आदि कार्यों से निबटकर गांधीजी कातने बैठे। देखा, वह काबुली फिर वहां आकर खड़ा हो गया है। एक व्यक्ति ने गांधीजी से कहा, "बापू, देखिए, यह वही काबुली है।"

गांधीजी बोले, "उसे रोको नहीं, मेरे पास आने दो।"

वह गांधीजी के पास आया। उन्होंने पूछा, "भाई, तुम यहां क्यों खड़े थे?"

काबुली ने उत्तर दिया, "आप अहिंसा का उपदेश देते हैं। मैं आपकी नाक काटकर यह देखना चाहता हूं कि उस समय आप कहांतक अहिंसक रह सकते हैं।"

गांधीजी हँस पड़े और बोले, "बस, यही देखना है, लेकिन सिर्फ नाक ही क्यों, अपना यह धड़ और यह सिर भी मैं तुम्हें सौंपे देता हूं। तुम जो भी प्रयोग करना चाहो, बिना झिझक के कर सकते हो।"

वह काबुली गांधीजी के प्रेम-भीने शब्द सुनकर चकित रह गया। उसने ऐसा निडर व्यक्ति कहां देखा था! एक क्षण वह खड़ा रहा। फिर बोला, "मुझे यकीन हो गया है कि आप सत्य और अहिंसा के सच्चे पुजारी हैं। मुझे माफ कर दीजिये।"

: २० :

मैं भंगी की चरण-रज ले लूंगा, पर...

जब गोलमेज परिषद् में भाग लेने के लिए गांधीजी इंग्लैण्ड गये तो देश-विदेश के अनेक संवाददाता उनके साथ थे। उनमें से बहुत-से संवाददाता जहाजी जीवन की घटनाओं पर नमक-मिर्च लगाकर प्रसारित किया करते थे। वे प्रार्थना के दृश्य तथा चर्खा कातने के चित्र देकर ही संतुष्ट नहीं होते थे, ऐसी-ऐसी कल्पनाएं भी करते थे कि हँसी आ जाय। उदाहरण के लिए एक सम्वाद-दाता ने एक ऐसी बिल्ली का आविष्कार किया था, जो प्रति-दिन गांधीजी के साथ दूध पीती थी।

इन्हींमें एक संवाददाता थे श्री स्लोकोब। गांधीजी से अपनी यरवदा-जेल की मुलाकात का रोमांचकारी वर्णन प्रकाशित कर वह काफी प्रसिद्ध हो गये थे। 'ईवनिंग स्टैण्डर्ड' में गांधीजी की उदारता की प्रशंसा करते समय उन्होंने भी अनुभव किया कि बिना किसी स्पष्ट उदाहरण के यह विवरण अधूरा रह जायगा। बस, उन्होंने अपनी कल्पना दौड़ाई और लिख डाला कि जब प्रिंस आफ वेल्स भारत गये थे तब गांधीजी ने उन्हें दण्डवत किया था।

यह पढ़कर गांधीजी ने उन्हें अपने पास बुलाया। बोले, "मि० स्लोकोब, आपसे तो मैं यह आशा करता था कि आप सही बातें जानते होंगे और सही बातें ही लिखेंगे, परन्तु आपने जो कुछ लिखा है वह तो आपकी कल्पना-शक्ति को भी लांछित करनेवाला है। मैं भारतवर्ष के गरीब-से-गरीब भंगी और अछूत के सामने न केवल घुटने टेकना ही पसन्द करूंगा, बल्कि उनकी चरण-रज भी ले लूंगा, क्योंकि उन्हें सदियों से पददलित करने में मेरा भी भाग रहा है, परन्तु प्रिंस आफ वेल्स तो दूर, मैं बादशाह तक को भी दण्डवत नहीं करूंगा। वह एक महान उद्दण्ड सत्ता का प्रतिनिधि है। एक हाथी भले ही मुझे कुचल दे, परन्तु मैं उसके सामने सिर न झुकाऊंगा, परन्तु अजान में चींटी पर पैर रख देने के कारण उसको प्रणाम कर लूंगा।"

निर्दोष प्राणी की बलि से देवी प्रसन्न नहीं होती

एक दिन बिहार के चम्पारन जिले के एक गांव से होकर लोगों का एक जुलूस देवी के थानक की ओर जा रहा था। संयोग से गांधीजी उस दिन उसी गांव में ठहरे हुए थे। जब वह जुलूस गांधीजी के निवास के पास से होकर गुजरा तो उसका शोर सुनकर उनका ध्यान उसकी ओर गया। पास बैठे हुए एक कार्यकर्ता से उन्होंने पूछा, "यह कैसा जुलूस है ? और ये इतना शोर क्यों मचा रहे हैं ?"

कार्यकर्ता पता लगाने के लिए बाहर आया ही था कि उत्सुकतावश वह स्वयं भी बाहर आ गये और सीधे जुलूस के पास चले गये। उन्होंने देखा कि सबसे आगे एक हट्ट-कट्टा बकरा चला जा रहा है। उसके गले में फूलों की मालाएं पड़ी हुई हैं और माथे पर टीका लगा हुआ है। वह समझ गये कि यह बलि का बकरा है। क्षण-भर में अन्धविश्वास में डूबे हुए इन भोले-भाले लोगों का सजीव चित्र उनके मस्तिष्क में उभर आया। हृदय करुणा से भीग गया। थोड़ी देर तक इसी विचार में डूबे वह जुलूस के साथ चलते रहे। लोग अपनी धुन में इतने मस्त थे कि वे यह जान ही नहीं सके कि गांधीजी उनके साथ-साथ चल रहे हैं।

जुलूस अपने स्थान पर पहुंचा। बकरे का बलिदान करने के लिए विधिवत तैयारी होने लगी। तभी गांधीजी उन लोगों के

सामने जा खड़े हुए। कुछ लोग उन्हें पहचानते थे। निलहे गोरों के अत्याचार के विरुद्ध वही तो उनकी सहायता करने आये थे। उन्हें अपने सामने देखकर वे चकित हो उठे। तभी गांधीजी ने उनसे पूछा, "इस बकरे को आप लोग यहां क्यों लाये हैं?"

सहसा किसी को कुछ कहते न बना। क्षण भर बाद एक व्यक्ति ने साहस करके कहा, "देवी को भोग चढ़ाने के लिए लाये हैं।"

गांधीजी ने पूछा, "ऐसा आप क्यों करते हैं?"

उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, "देवी को प्रसन्न करने के लिए।"

गांधीजी बोले, "आप देवी को प्रसन्न करने के लिए बकरे की भेंट चढ़ाना चाहते हैं, लेकिन मनुष्य तो बकरे से भी श्रेष्ठ है।"

वे कुछ समझ न पाये। बोल उठे, "जीहां, मनुष्य तो श्रेष्ठ है ही।"

गांधीजी ने कहा, "यदि हम मनुष्य का भोग चढ़ायें तो क्या देवी अधिक प्रसन्न नहीं होगी?"

बड़ा विचित्र प्रश्न था। उन ग्रामीणों ने इसपर कभी विचार नहीं किया था। वे सहसा कोई उत्तर न दे सके। गांधीजी ने ही फिर कहा, "क्या यहांपर कोई ऐसा मनुष्य है, जो देवी को अपना भोग चढ़ाने को तैयार हो?"

अब भी उनमें से कोई नहीं बोला। थोड़ा रुककर गांधीजी ने कहा, "इसका मतलब है कि आपमें से कोई तैयार नहीं है। तब मैं तैयार हूं।"

वे सब लोग अब तो और भी हक्के-बक्के हो उठे। पागल-से एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे। उन्हें सूझ नहीं रहा था कि वे

क्या कहें ? विमूढ़-से खड़े ही रहे। गांधीजी ने अब अत्यन्त व्यथित स्वर में कहा, "गूंगे और निर्दोष प्राणी के रक्त से देवी प्रसन्न नहीं होती। अगर यह बात किसी तरह सत्य भी हो तो मनुष्य का रक्त अधिक मूल्यवान है। वही देवी को अर्पण करना चाहिए, परन्तु आप ऐसा नहीं करते। मैं कहता हूं कि निर्दोष प्राणी की बलि चढ़ाना पुण्य नहीं है, पाप है, अधर्म है।"

: २२ :

वह मजदूर कहां है ?

चम्पारन में निलहे गोरों के विरुद्ध जांच का काम चल रहा था। गांधीजी के आसपास काफी लोग इकट्ठे हो गये थे। उनमें कुष्ठ-रोग से पीड़ित एक खेतिहर मजदूर भी था। वह पैरों में चिथड़े लपेटकर चलता था। उसके घाव खुल गये थे और पैर सूज गये थे। उसे असह्य वेदना होती थी, लेकिन न जाने किस आत्मशक्ति के बल पर वह अपना काम कर रहा था।

एक दिन चलते-चलते उसके पैरों के चिथड़े खुलकर रास्ते में गिर गये, घावों से खून बहने लगा, चलना दूभर हो गया। दूसरे साथी आगे बढ़ गये। गांधीजी तो सबसे तेज चलते थे। वह सबसे आगे थे। उस रोगी की ओर किसीने ध्यान नहीं दिया।

अपने आवास पर पहुंचकर जब सब लोग प्रार्थना के लिए बैठे तब गांधीजी ने उसको नहीं देखा। पूछा, "हमारे साथ जो मजदूर था, वह कहां है ?"

एक व्यक्ति ने कहा, "वह जल्दी चल नहीं पा रहा था। थक जाने से एक पेड़ के नीचे बैठ गया था।"

गांधीजी चुप हो गये और हाथ में बत्ती लेकर उसे खोजने निकल पड़े। वह मजदूर एक पेड़ के नीचे बैठा रामनाम ले रहा था। गांधीजी को देखकर उसके चेहरे पर प्रकाश चमक आया। गांधीजी ने कहा, "तुमसे चला नहीं जा रहा था तो मुझसे कहना चाहिए था, भाई।"

उन्होंने उसके खून से सने हुए पैरों की ओर देखा। चादर फाड़कर उन्हें लपेटा। फिर सहारा देकर उसे अपने आवास पर ले आये। उस दिन उसके पैर धोकर ही उन्होंने अपनी प्रार्थना शुरू की।

: २३ :

मरने के लिए अकेला आया हूं

चम्पारन बिहार में है। वहां गांधीजी ने सत्याग्रह की एक शानदार लड़ाई लड़ी थी। गोरे वहां के लोगों को बड़ा सताते थे। नील की खेती करने के कारण वे निलहे कहलाते थे। उन्हीं-की जांच करने को गांधीजी वहां गये थे। उनके इस काम से जनता जाग उठी। उसका साहस बढ़ गया, लेकिन गोरे बड़े परेशान हुए। वे अबतक मनमानी करते आ रहे थे। कोई उनकी ओर अंगुली उठानेवाला तक न था। अब इस एक आदमी ने तूफान खड़ा कर दिया। वे आग-बबूला हो उठे।

इसी समय एक व्यक्ति ने आकर गांधीजी से कहा, "यहां का गोरा बहुत दुष्ट है। वह आपको मार डालना चाहता है। इस काम के लिए उसने हत्यारे भी तैनात कर दिये हैं।"

गांधीजी ने बात सुनली। उसके बाद एक दिन रात के समय अचानक वह उस गोरे की कोठी पर जा पहुंचे। गोरे ने उन्हें देखा तो घबरा गया। उसने पूछा, "तुम कौन हो ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "मैं गांधी हूं।"

वह गोरा और भी हैरान हो गया। बोला, "गांधी !"

"हां, मैं गांधी ही हूं।" गांधीजी ने उत्तर दिया, "सुना है तुम मुझे मार डालना चाहते हो। तुमने हत्यारे भी तैनात कर दिये हैं।"

गोरा सन्न रह गया, जैसे सपना देख रहा हो। अपने मरने की बात कोई इतने सहज भाव से कैसे कह सकता है ! वह कुछ सोच सके, इससे पहले ही गांधीजी फिर बोले, "मैंने किसीसे कुछ नहीं कहा। अकेला ही आया हूं।"

बेचारा गोरा ! उसने डर को जीतनेवाले ऐसे व्यक्ति कहां देखे थे ! वह आगे कुछ भी न बोल सका।

: २४ :

यदि कुछ और विचार है तो बता दो

राजकोट-आन्दोलन ने जब देशव्यापी महत्व प्राप्त कर लिया तब राज्य के अधिकारी और जमींदार भड़क उठे। उस आन्दो-

लन के पीछे जनता का बहुत बड़ा बल था। गांधीजी की प्रार्थना-सभाओं में अपार जन-समूह इकट्ठा होता था। अधिकारियों ने सोचा, इस जन-समूह को आतंकित किया जाय। उन्होंने भाड़े के बदमाशों की एक टोली को लाठियों और डंडों से लैस कर प्रार्थना-स्थल की भीड़ को तितर-बितर करने का काम सौंपा।

प्रार्थना की समाप्ति के बाद वे गुण्डे भीड़ को चीरते हुए गांधीजी की ओर बढ़े। कांग्रेस स्वयंसेवकों ने सदैव की भांति अहिंसात्मक रीति से उन्हें रोकने का प्रयत्न किया। लेकिन उनकी सारी कोशिशें व्यर्थ गईं। गांधीजी मोटर की ओर बढ़ रहे थे कि उन बदमाशों ने उन्हें घेर लिया। परिस्थिति सहसा विकट हो उठी। धक्का-मुक्की और ठेला-ठेली के कारण गांधीजी संकट में पड़ गये। तभी सहसा उनका शरीर कांपने लगा। वह डर नहीं रहे थे, लेकिन उस हिंसात्मक वातावरण की प्रतिक्रिया के कारण उनका शरीर कांप उठा था। उपवास के कारण वह दुर्बल भी हो गये थे। वह किसी भी क्षण गिर सकते थे, लेकिन उसी समय उन्होंने आंखें मूंद लीं और भक्तिभाव से 'रामनाम' का जप करने लगे।

कई क्षण बीत गये। उन्होंने आंखें खोलीं। अब परिस्थिति बिलकुल बदल गई थी। उन्होंने दृढ़तापूर्वक सभी स्वयंसेवकों और आश्रमवासियों से कहा कि वे चले जायं और उन्हें गुण्डों की दया पर छोड़ दें। वे अब मोटर से नहीं आवेंगे। पैदल ही चलकर पहुंचेंगे। उसके बाद उन्होंने गुण्डों के मुखिया को अपने पास बुलाया और कहा, "अगर तुम्हारी इच्छा बहस करने की है तो मैं तैयार हूं और यदि तुम्हारा विचार कुछ और है तो वह भी

बता दो।"

आश्चर्य कि गांधीजी के स्वर कान में पड़ते ही गुण्डों की हिंसा मोम की तरह पिघल गई। उनका सरदार हाथ जोड़कर गांधीजी के सामने खड़ा हो गया। बोला, "मुझे माफ कर दो, बापूजी। मुझे आपसे क्या बहस करनी है! आप अपना हाथ मेरे कन्धे पर रखिए। जहां भी आप चलने को कहेंगे, मैं आपको सुरक्षित पहुंचा दूंगा।"

और उस सन्ध्या को गांधीजी अपना एक हाथ गुण्डों के सरदार के कंधों पर रखकर अपने डेरे पर लौटे।

: २५ :

यह दीया कौन लाया है ?

सेवाग्राम में गांधीजी का जन्म-दिवस मनाया गया। शाम की प्रार्थना के बाद गांधीजी प्रवचन करनेवाले थे। इसलिए आस-पास के बहुत-से लोग आ गये थे।

गांधीजी ठीक समय पर प्रार्थना-सभा में आये। देखा, उनके सामने घी का एक दीया जल रहा है। यह नई बात थी। वह एकटक उसकी ओर देखने लगे। कई क्षण देखते रहे। फिर प्रार्थना शुरू हुई और वह उसमें लीन हो गये।

प्रार्थना के बाद प्रवचन प्रारम्भ हुआ। चारों ओर पूर्ण शान्ति थी। सब लोग यह जानने के लिए उत्सुक थे कि अपने जन्म-दिवस पर गांधीजी क्या कहनेवाले हैं। सहसा गांधीजी ने पूछा, "यह

दीया कौन लाया है ?"

कस्तूरबा पास ही बैठी हुई थीं। बोलीं, "मैं लाई हूं।"

गांधीजी ने पूछा, "कहां से लाई है ?"

बा ने उत्तर दिया, "गांव से लाई हूं। आज आपकी वर्षगांठ है न ?"

गांधीजी थोड़ी देर के लिए मौन हो गए। फिर गंभीर स्वर में बोले, "आज अगर सबसे बुरा कोई काम हुआ है तो यह कि बा ने घी का दीया जलाया। आज मेरी वर्षगांठ है, इसीलिए दीया जलाया गया है। आस-पास के गांव में जो लोग रहते हैं, वे कैसे जीते हैं, यह मैं रोज देखता हूं। उन बेचारों को ज्वार-बाजरे की सूखी रोटी पर चुपड़ने के लिए तेल तक नहीं मिलता और यहां आज मेरे आश्रम में घी का दीया जल रहा है! बेचारे गरीब किसानों को जो चीज नसीब न हो, उसे हम इस तरह बरबाद कैसे कर सकते हैं ?"

उनके उस प्रवचन में दर्द जैसे साकार हो उठा था।

: २६ :

कानून के सामने सब बराबर होते हैं

गांधीजी मानते थे कि सामाजिक या सामूहिक जीवन की ओर बढ़ने से पहले कौटुम्बिक जीवन का अनुभव प्राप्त करना आवश्यक है। उनके रामराज्य की यह पहली सीढ़ी थी। इसीलिए वे आश्रम-जीवन बिताते थे। वहां सभी एक भोजनालय में भोजन

करते थे। इससे समय और धन तो बचता ही था, सामूहिक जीवन का अभ्यास भी होता था। लेकिन यह सब होना चाहिए समय-पालन, सुव्यवस्था और शुचिता के साथ।

इस ओर लोगों को प्रोत्साहित करने के लिए गांधीजी स्वयं भी सामूहिक रसोईघर में भोजन करते थे। भोजन के समय दो बार घण्टी बजती थी। जो दूसरी घण्टी बजने तक भोजनालय में नहीं पहुंच पाता था उसे दूसरी पंक्ति के लिए बरामदे में इंतजार करना पड़ता था। दूसरी घण्टी बजते ही रसोईघर का द्वार बंद कर दिया जाता था, जिससे बाद में आनेवाले व्यक्ति अन्दर न आने पावें।

एक दिन गांधीजी पिछड़ गये। संयोग से उस दिन आश्रमवासी श्री हरिभाऊ उपाध्याय भी पिछड़ गये। जब वे वहां पहुंचे तो देखा कि गांधीजी बरामदे में खड़े हैं। बैठने के लिए न बेंच है, न कुर्सी। हरिभाऊजी ने विनोद करते हुए कहा, "बापूजी, आज तो आप भी गुनहगारों के कठघरे में आ गये हैं!"

गांधीजी खिलखिलाकर हँस पड़े। बोले, "कानून के सामने तो सब बराबर होते हैं न ?"

हरिभाऊजी ने कहा, "बैठने के लिए कुर्सी लाऊं, बापू ?"

गांधीजी बोले, "नहीं, उसकी जरूरत नहीं है। सजा पूरी भुगतनी चाहिए। उसीमें सच्चा आनन्द है।"

मैं निकाल दूं तो वह किसके पास जायगा

गांधीजी मगनबाड़ी में ठहरे हुए थे। एक दिन एक युवक उनसे मिलने आया। उसकी आयु लगभग अठारह वर्ष की होगी। उसे कम्पन रोग था। हाथ-पैर कांपने लगते तो रुकते ही न थे। उसने गांधीजी से कहा, "मैं किसीके काम नहीं आ सकता। मेरा जीवन एक बोझ बन गया है। मुझे आप अपने पास रख लीजिये।"

गांधीजी बोले, "मैं हर अपंग को अपने साथ कैसे रख सकता हूं! मेरे लिए यह सम्भव नहीं है। आप कहीं और आसरा खोजें।"

परन्तु वह युवक अपनी बात पर अडिग रहा। वह किसी भी तरह वहां से जाने को राजी नहीं हुआ। शाम तक बराबर के मकान की सीढ़ियों पर बैठा रहा। एक भाई ने इस बात की सूचना गांधीजी को दी। कहा, "इस युवक को निकाल बाहर किया जाय।"

यह सुनना था कि गांधीजी बोल उठे, "यदि मैं उसे निकाल बाहर करूं तो वह आखिर किसके पास जायगा? रहने दो बिचारे को! मैं सोचकर उसके योग्य काम बता दूंगा।"

वह युवक वहीं रह गया। गांधीजी ने सबसे पहले उसे साग-सब्जी धोने का काम बताया। शुरू-शुरू में वह यह काम भी नहीं कर पाता था, लेकिन वह हिम्मत हारनेवाला नहीं था। काम करने की उसके मन में बड़ी उत्कट इच्छा थी। वह लगा रहा और धीरे-धीरे हाथ में चाकू लेकर साग काटने लगा। उसके

मन में अपनी नसों को वस में रखने की इच्छा-शक्ति तीव्र होती गई। कुछ महीने बीतते-न-बीतते वह सचमुच ठीक हो गया। उसके बाद तो वह पढ़ने के लिए अमरीका चला गया। अदम्य इच्छा-शक्ति, सहानुभूति और प्यार, ये तीनों मिल जायं तो हिमालय भी हिलाया जा सकता है।

: २८ :

मैं भी ऐसे नाइयों से बाल नहीं कटवाऊँगा

गर्मी के दिन थे। गांधीजी मगनवाड़ी से आकर सेवाग्राम-आश्रम में नये-नये ही बसे थे। गोविन्द नाम का एक हरिजन लड़का उनकी सेवा में रहता था। उनके खाने-पीने, सोने-बैठने की सारी व्यवस्था वही करता था। वह इस बात से बहुत प्रसन्न था कि हरिजन होकर भी गांधीजी की सेवा करने का उसे सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। एक दिन उसने गांधीजी से कहा, "मैं थोड़ी देर के लिए वर्धा जाना चाहता हूं।"

गांधीजी ने पूछा, "किसलिए ?"

गोविन्द ने उत्तर दिया, "मेरे सिर के बाल बहुत बढ़ गये हैं। वहां जाकर उनको कटवाना चाहता हूं।"

गांधीजी बोले, "क्या सेगांव में नाई नहीं हैं ?"

"नाई तो हैं, पर वे सब ऊंची जाति के हिन्दुओं के हैं।"

"तो क्या वे तेरे बाल नहीं काटते ?"

गोविन्द ने कहा, "जी नहीं, वे हरिजनों के बाल नहीं काटते।

सवर्ण हिन्दुओं की तरह वे भी हमसे नफरत करते हैं।"

गांधीजी ने पूछा, "तो क्या वर्धा के सवर्ण नाई हरिजनों के बाल काट देते हैं ?"

गोविन्द ने झिझकते हुए उत्तर दिया, "जी नहीं। जाति बताने पर वे भी नहीं काटते।"

"तो तू जाति छिपाकर बाल कटवायेगा ?"

"नहीं बापूजी, जाति छिपाकर मैं अपना धर्म नहीं डुबोना चाहता।"

"तो फिर वर्धा जाकर क्या करेगा ? तेरे बाल कौन काटेगा ?"

गोविन्द ने कहा, "बापूजी, वहां एक-दो हरिजन नाई भी हैं। वे बड़े प्रेम से मेरे बाल काट देते हैं।"

गांधीजी ने गम्भीर होकर कहा, "अच्छी बात है, तू जा। लेकिन अगर सेगांव के सवर्ण नाई तेरे बाल नहीं काट सकते तो मैं भी उनसे अपने बाल नहीं कटवाऊंगा।"

और उसके बाद से गांधीजी ने बाल काटने की मशीन (कैंची) मंगा ली और आश्रम-वासियों की मदद से अपने बाल कटवाने लगे।

: २६ :

पैसे को धरोहर मानो

एक बार गांधीजी दिल्ली से वर्धा जा रहे थे। राजकुमारी अमृतकौर उनके साथ थीं। गांधीजी ने उनसे कहा कि सन्ध्या का

भोजन वह गाड़ी में ही करेंगे।

इसके लिए गर्म दूध और गर्म पानी साथ ले जाना आवश्यक था। लेकिन राजकुमारी के पास थरमस केवल एक ही था। तब वह क्या करें? किसी तरह श्री घनश्यामदास बिड़ला को इस कठिनाई का पता चल गया। एक दिन पहले ही वह एक नया थरमस खरीदकर लाये थे। वही उन्होंने राजकुमारी को दे दिया। आवश्यकता थी, इसलिए उन्होंने उसे ले लिया।

लेकिन गांधीजी की दृष्टि तो बड़ी तीव्र थी। खाने के समय उन्होंने उस थरमस को देखा। तुरन्त भांप गये कि यह नया है। पूछा, "तुमने यह नया थरमस खरीदा है?"

राजकुमारी ने उत्तर दिया, "जी, नहीं। बिड़लाजी ने दिया है। हमारे पास एक ही थरमस रह गया था।"

यह सुनकर गांधीजी को बहुत दुःख हुआ। बोले, "तुम इतनी गरीब हो, जो दूसरों का पैसा खर्च करवाती हो! मान लिया, उनके पास बहुत पैसा है, पर तुमको तो अधिक समझदारी से काम लेना चाहिए। भगवान ने जिसे पैसा दिया है, वह उसे धरोहर माने। उसमें से एक कौड़ी भी किसी गैर-जरूरी चीज पर खर्च न करे।

महादेवभाई वापस दिल्ली लौटने वाले थे। उन्हींके हाथ वह नया थरमस उन्होंने बिड़लाजी को लौटा दिया।

बिना मज़दूरी किये खाना पाप है

एक समय अवधेश नाम का एक युवक वर्धा में गांधीजी के आश्रम में आया। बोला, "मैं दो-तीन रोज ठहरकर यहां सब कुछ देखना चाहता हूं। बापूजी से मिलने की भी इच्छा है। मेरे पास खाने-पीने के लिए कुछ भी नहीं है। मैं यहीं भोजन करूंगा।"

गांधीजी ने उसे अपने पास बुलाया। पूछा, "कहां के रहने वाले हो और कहां से आये हो ?"

अवधेश ने उत्तर दिया, "मैं बलिया जिले का रहने वाला हूं। कराची कांग्रेस देखने गया था। मेरे पास पैसा नहीं है। इसलिए कभी मैंने गाड़ी में बिना टिकट सफर किया, कभी पैदल मांगता-खाता चल पड़ा। इसी प्रकार यात्रा करता हुआ आ रहा हूं।"

यह सुनकर गांधीजी गंभीरता से बोले, "तुम्हारे जैसे नवयुवक को ऐसा करना शोभा नहीं देता। अगर पैसा पास नहीं था तो कांग्रेस देखने की क्या जरूरत थी ? उससे लाभ भी हुआ ? बिना मजदूरी किये खाना और बिना टिकट गाड़ी में सफर करना सब चोरी है और चोरी पाप है। यहां भी तुमको बिना मजदूरी किये खाना नहीं मिल सकेगा।"

अवधेश देखने में उत्साही और तेजस्वी मालूम देता था। कांग्रेस का कार्यकर्ता भी था। उसने कहा, "ठीक है। आप मुझे काम दीजिये। मैं करने के लिए तैयार हूं।"

गांधीजी ने सोचा, इस युवक को काम मिलना ही चाहिए और काम के बदले में खाना भी मिलना चाहिए। समाज और राज्य दोनों का यह दायित्व है। राज्य तो आज पराया है, लेकिन समाज तो अपना है। वह भी इस ओर ध्यान नहीं देता, परन्तु मेरे पास आकर जो आदमी काम मांगता है उसे मैं 'ना' नहीं कर सकता। उन्होंने उस युवक से कहा, "अच्छा, अवधेश, तुम यहां पर काम करो। मैं तुमको खाना दूंगा और आठ आना रोज के हिसाब से मजदूरी भी दूंगा। जब तुम्हारे पास किराए के लायक पैसे हो जायं तब अपने घर जाना।"

अवधेश ने गांधीजी की बात स्वीकार कर ली और वह वहां रहकर काम करने लगा।

: ३१ :

गांवों में विलायती दवाएं क्यों ?

एक बार एक अमरीकी बहन सेवाग्राम-आश्रम में रहने के लिए आई। एक दिन काम करते हुए अचानक वह किसी तरह जल गई। सोचा, यहां किसीके पास कोई-न-कोई मरहम तो होगा ही, इसलिए उन्होंने मरहम मांगा।

गांधीजी ने कहा, "इसपर मिट्टी लगाओ।"

उसने ऐसा ही किया और उसे आराम भी मालूम हुआ।

वह किसी पत्र की प्रतिनिधि थी और भारतीय संस्कृति का अध्ययन करने के लिए इस देश में आई थी। इसलिए उसे समझाते

हुए गांधीजी बोले, "गांवों में विलायती दवाओं का उपयोग क्यों किया जाय ? अगर ऐसा हुआ तो हमारे लोग कंगाल बन जायंगे। मामूली घाव का इलाज क्या हो सकता है, यह हमें जान लेना चाहिए। उसके स्थान पर झट से तैयार मरहम लगाना मेरे विचार में एक प्रकार से आलस्य को ही बढ़ावा देना है। पुराने जमाने में हमारे देश की बूढ़ी बहनें देसी दवाइयों का अच्छा ज्ञान रखती थीं। आज भी रखती हैं, लेकिन अब उसमें कुछ सुधार होना चाहिए। अगर उन्हें वैज्ञानिक रीति से समझाया जाय तो वे गांवों में लेडी डाक्टर जरूर बन सकती हैं। आप एक शिक्षित महिला हैं। हमारे देश की स्थिति का अध्ययन करने आई हैं, इसलिए आप इन बातों की ओर खास तौर से ध्यान दीजियेगा।"

३२

मैं पहले तिल साफ करूंगा

मगनवाड़ी में तेलघानी गांधीजी के कमरे के पीछे ही चलती थी और तिल आदि की सफाई उनके सामने के बरामदे में होती थी। तिल की सफाई का काम बा और दूसरी बहनें करती थीं। एक रोज बा ने बलवन्तसिंह से कहा, "बलवन्त, देखो, ये तिल बहुत बारीक हैं और इनमें जो कचरा है, वह भी बहुत बारीक है। मेरी आंख से दिखाई नहीं देता। तुम किसी मजदूरनी से साफ करा दो तो अच्छा हो।"

बलवन्तसिंह ने तुरन्त कहा, "अवश्य करा दूंगा।"

उन दिनों एक बोरे की सफाई करने के लिए एक मजदूरनी दो या चार आने लेती थी। तुरन्त एक मज़दूरनी को तिल साफ करने के लिए लगा दिया गया, लेकिन तभी गांधीजी किसी काम से अपने कमरे से बाहर निकले। मजदूरनी को तिल साफ करते हुए देखकर बोले, "इस बहन को किसनें लगाया है ?"

इसका उत्तर कौन दे ! अन्त में बलवन्तसिंह ने डरते-डरते कहा, "बापूजी, मैंने लगाया है।"

गांधीजी बोले, "क्यों लगाया है ? मैंने तो यह काम बा को सौंपा था न ! तुम बीच में क्यों पड़े ?"

बलवन्तसिंह ने सकुचाते हुए उत्तर दिया, "तिल बहुत बारीक हैं और उनमें कचरा भी बारीक है। बा को ठीक-ठीक दिखाई नहीं देता। फिर इसकी सफाई में पैसे भी ज्यादा नहीं लगेंगे।"

गांधीजी सहसा गम्भीर हो गये। उन्होंने कहा, "ठीक है। मैं दूसरे सब काम छोड़कर पहले तिल साफ करूंगा।"

वे सूप लेकर तिल साफ करने लगे। बलवन्तसिंह तो जैसे पसीना-पसीना हो उठे। पास वाले कमरे में बा सब सुन रही थीं। थोड़ी देर में वे बाहर आईं और गांधीजी के हाथ से सूप छीन कर बोलीं, "आप अपना काम करें। हम साफ कर लेंगे।"

गांधीजी चले गये और बा तिल साफ करने लगीं।

इसका प्रायश्चित्त करना होगा

उस वर्ष काठियावाड़ के राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं ने अपना वार्षिक सम्मेलन मोरबी में किया था। उसी अवसर पर काठियावाड़ के नौजवान कांग्रेसियों का भी एक सम्मेलन हुआ था। सरदार बल्लभभाई पटेल और पंडित जवाहरलाल नेहरू क्रमश: इन दोनों के सभापति थे। गांधीजी तो काठियावाड़ के ही थे। उन्हें विशेष रूप से आमंत्रित किया गया था। अपने दल के साथ वह मोरबी गए और सम्मेलन की समाप्ति पर उसी प्रकार वापस लौट आये।

गाड़ी रवाना होने के बाद सहसा गांधीजी ने अपने साथियों के बारे में पूछताछ की। कितने व्यक्ति साथ आये थे, कितने वापस जा रहे हैं, टिकट कितने हैं, यह सब उन्होंने विस्तार से जानना चाहा। जांच करने पर पता लगा कि यात्री कम हैं और टिकट ज्यादा हैं। श्री महादेवी देसाई ने उतने ही व्यक्तियों के लिए टिकट खरीदे थे, जितने साबरमती से रवाना हुए थे। लेकिन अब पता लगा कि दो भाई मोरबी में ही रह गए हैं। उन्होंने इस बात की सूचना नहीं दी थी और ये लोग भी वापस लौटने की जल्दी में पूछना भूल गए थे।

अब चलती रेल में इस तथ्य का पता लगा। गांधीजी गम्भीर हो उठे। उनका चेहरा अन्तर की वेदना से व्यथित हो आया। वह इतने अशान्त हुए कि उस रात न तो स्वयं सोये, न उनके

साथी ही सो सके। सारी रात उनके अन्तर में तीव्र मन्थन और चिन्तन चलता रहा, जैसे वेदना का कोई पार ही नहीं था। उन्होंने सारा दोष अपने ऊपर ले लिया। वे अपने को ही प्रताड़ित करने लगे—मैं इतना गाफिल क्यों बन गया ? मैंने ध्यान क्यों नहीं रखा ? ये सब बातें मैंने गाड़ी पर सवार होने से पहले ही क्यों नहीं पूछीं ? गलती मेरी है। महादेव तो अभी बच्चा है, पर मुझे बुढ़ापे में यह क्या हो गया ! लोग मेरी सच्चाई पर भरोसा करके मुझे पैसा देते हैं। उस पैसे का ठीक-ठीक उपयोग करना मेरा कर्तव्य हो जाता है। आज मैं चूक गया। मुझे इसका जवाब अपने सिरजनहार के सामने देना होगा। आदि-आदि।

साथियों ने उनको बहुत समझाया। महादेवभाई ने अपनी असावधानी के लिए क्षमा मांगी। विश्वास दिलाया कि जो पैसे अधिक खर्च हुए हैं उन्हें वह आश्रम के हिसाब में नहीं डालेंगे। अपने पास से दे देंगे। लेकिन गांधीजी को संतोष नहीं हुआ। बोले, "तुम अपने पास से क्या दोगे ! तुम्हारे पास रह ही क्या गया है ! तुमने अपना सबकुछ देश को दे दिया है। अब अलग कमाई कैसे करोगे ? यह तो एक भारी भूल हम सबसे हो ही गई है। इसका प्रायश्चित्त हमें करना होगा।"

काम की चीज को संभालकर रखना चाहिए

नहाते समय गांधीजी साबुन का प्रयोग नहीं करते थे। अपने पास एक खुरदरा पत्थर रखते थे। वर्षों पहले मीराबहन ने उन्हें यह पत्थर दिया था।

नोआखाली की यात्रा के समय एक बार वह पत्थर संयोग से पिछले पड़ाव पर छूट गया। उस समय मनु गांधीजी के साथ रहती थी। स्नानघर में जब उसने गांधीजी की सब चीजें रखीं तब उसे पत्थर की याद आई। उसने गांधीजी से कहा, "बापूजी, नहाते समय आप जिस पत्थर का प्रयोग करते हैं वह मैं कहीं भूल आई हूं। कल जिस जुलाहे के घर ठहरे थे, शायद वह वहीं छूट गया है। अब क्या करूं?"

गांधीजी कुछ देर सोचते रहे। फिर बोले, "तुझसे गलती हुई है। तू उस पत्थर को खुद खोजकर ला।"

सुनकर मनु सकपका गई। फिर झिझकते हुए पूछा, "गांव में बहुत से स्वयंसेवक हैं, उनमें से किसी को साथ ले जाऊं?"

बापू ने पूछा, "क्यों?"

मनु को क्रोध आ गया। बापूजी सबकुछ जानते हैं, फिर भी पूछते! हैं यहां नारियल और सुपारी के घने जंगल हैं। अनजान आदमी तो उसमें खो जाय। फिर ये तूफान के दिन हैं। आदमी आदमी का गला काटता है। आदमी आदमी की लाज लूटता है। राह एकदम वीरान और उजाड़ है। उसपर कोई

अकेले कैसे जाय ? मगर भूल जो हुई थी।

उसने 'क्यों' का कोई जवाब नहीं दिया। किसी को साथ भी नहीं लिया, अकेली ही उस राह पर चल पड़ी। वह कांप रही थी, पर उसके कदम आगे बढ़ रहे थे। पैरों के निशान देखती जाती थी, रामनाम लेती जाती थी और चलती जाती थी।

आखिर वह उस जुलाहे के घर पहुंच गई। उस घर में केवल एक बुढ़िया रहती थी। वह क्या जाने कि वह पत्थर कितना कीमती था! शायद उसने तो उसे फेंक दिया था। मनु इधर-उधर ढूंढ़ने लगी। आखिर वह मिल गया। मनु के आनन्द का पार न रहा।

खुशी-खुशी लौटी। डेरे पर पहुंचते-पहुंचते एक बज गया। जोर की भूख लग आई थी और इस बात का दुख भी था कि इस भूल के कारण वह अपने बापू की सेवा से वंचित रह गई। इसीलिए वह उन्हें पत्थर देते समय रो पड़ी।

उसे समझाते हुए गांधीजी बोले, "इस पत्थर के निमित्त आज तेरी परीक्षा हुई। इसमें तू पास हुई। इससे मुझे कितनी खुशी हो रही है। यह पत्थर मेरा पच्चीस साल का साथी है। जेल में, महल में, जहां भी मैं जाता हूं, यह मेरे साथ रहता है। अगर यह खो जाता तो मुझे और मीराबहन को बहुत दुख होता। तूने आज एक पाठ सीखा। 'ऐसे पत्थर बहुत मिल जायंगे। दूसरा ढूंढ़ लेंगे,' इस खयाल से बेपरवाह नहीं होना चाहिए। काम की हर चीज को संभालकर रखना सीखना चाहिए।"

मेरे पास शान का क्या काम!

उन दिनों गांधीजी पूर्वी बंगाल की यात्रा पर थे। एक दिन उन्हें नाव के द्वारा मालीकण्डा से लोहागंज जाना था। वह नाव जमींदार श्री राय की थी। दो दिन के लिए उन्होंने उसे गांधीजी की सेवा में रख दिया था।

उसी मार्ग पर श्री राय का घर भी पड़ता था, लेकिन उस दिन गांधीजी को उस कस्बे में नहीं जाना था। पर जिस समय वह नाव उनके घर के सामने पहुंची तो अन्दर से एक व्यक्ति व्यवस्थापक के पास आया और बोला, "श्री राय के घर की महिलाएं गांधीजी के दर्शन करना चाहती हैं।"

कार्यक्रम में इस बात की कोई व्यवस्था नहीं थी। इसलिए व्यवस्थापक महोदय को यह अच्छा नहीं लगा। बोले, "पहले स्वीकृति क्यों नहीं ली थी? क्या जगह-जगह नाव के रोके जाने से इतने बड़े नेता की शान फीकी नहीं पड़ती! आप जानते हैं कि उसके ऊपर कितना बोझ है और वे कितने व्यस्त रहते हैं?"

ये सब बातें गांधीजी सुन रहे थे। उन्होंने कहा, "मेरे पास शान का क्या काम है, भाई? अपने ही देशवासियों के सामने अपनी मान-मर्यादा का विचार कैसे कर सकता हूं? चलिए, हम श्री राय के मकान के अन्दर चलें। वहां से लौटकर आगे बढ़ेंगे।"

नाव रुकी। गांधीजी अन्दर गये। स्त्रियों ने उनका यथोचित आदर-सत्कार किया और उनका हृदय-कमल खिल उठा।

बच्चों-जैसी कल्पनाएं नहीं करनी चाहिए

सत्याग्रह के दिनों में एक बार गांधीजी कराड़ी नाम के गांव में ठहरे हुए थे। एक दिन सवेरे-सवेरे ही क्या देखते हैं कि गांव-वालों ने एक बड़ा जुलूस निकाला है। सबसे आगे स्त्रियां हैं। राष्ट्रध्वज भी है, बाजे बज रहे हैं। सोचने लगे—ये लोग क्या सत्याग्रह करने जा रहे हैं? लेकिन पुरुषों के हाथों में ये फल, फूल और पैसे कैसे हैं?

सोचते-सोचते वे झोंपड़ी से बाहर निकल आये। लोग उनकी जयजयकार करने लगे। पास आकर सबने उनको श्रद्धा से प्रणाम किया और अपने-अपने उपहार उनके चरणों में समर्पित कर दिये।

गांधीजी ने पूछा, "आप लोग कैसे आये हैं? और यह बाजा किसलिए बज रहा है?"

जुलूस के नेता ने कहा, "महात्माजी, हमारे गांव में हमेशा पानी का अकाल रहता है। गर्मी के दिन आये कि कुएं सूख जाते हैं, लेकिन आश्चर्य कि इस बार आप आये तो सबकुछ पलट गया। गांव में आपके चरण पड़ते ही कुओं में पानी भर आया। उसी के लिए हम अपना भक्तिभाव प्रकट करने आए हैं।"

गांधीजी का स्वर जरा कठोर हो उठा। बोले, "तुम लोग पागल हो क्या? मेरे आने का और इस पानी का क्या सम्बन्ध! ईश्वर पर मेरा अधिकार नहीं है। उसके लिए आपकी वाणी

का जो मूल्य है, वही मेरी वाणी का है।"

सुनकर बेचारे गांव के लोग लज्जित हो उठे। अब गांधीजी हँस पड़े और बोले, "देखो, किसी पेड़ पर कौआ बैठे और संयोग से उसी घड़ी वह डाल टूट जाय तो क्या तुम कहोगे कि कौए ने पेड़ को तोड़ दिया? बहुत-से कारण होते हैं। तुम्हारे कुएं में पानी आया, उसका कारण यही होगा कि धरती के भीतर कुछ उथल-पुथल मची होगी और एक नया झरना फूट पड़ा होगा। हमें बच्चों जैसी कल्पनाएं नहीं करनी चाहिए। अब तुम सब लोग चर्खा काता करो। भारत माता को कपड़ा चाहिए।"

: ३७ :

सार्वजनिक काम में अव्यवस्था ठीक नहीं

एक बार मालाबार प्रदेश की एक कांग्रेस कमेटी का मंत्री गांधीजी के पास आया। वह बहुत दुखी था। उसने सार्वजनिक कोष का काफी धन लोक-सेवा में खर्च कर दिया था, लेकिन उसका हिसाब वह नहीं रख सका था। इसलिए जमा-खर्च ठीक नहीं हो सका था। लगभग एक हजार रुपये की कमी पड़ रही थी। उसने अपने लिए एक भी पैसा खर्च नहीं किया था, लेकिन हिसाब तो होना ही चाहिए। कार्यकारिणी समिति ने उससे कहा, "या तो हिसाब दो या पैसे भरो।"

मंत्री ने कहा, "मैं इतनी रकम कहां से दूंगा?"

समिति का उत्तर था, "हम कुछ नहीं जानते। सार्वजनिक

पैसे का हिसाब ठीक मिलना ही चाहिए।"

वह बेचारा बहुत दुखी हुआ। उसने सोचा, क्यों न गांधीजी के पास चला जाय। वे तो मेरी बात समझ लेंगे। उनके कहने से शायद ये लोग मान जायं। बस यही सोचकर वह गांधीजी के पास आया था। सब बातें बताकर उसने कहा, "बापू, मैं स्कूल की नौकरी छोड़कर अपने को कांग्रेस की सेवा के लिए समर्पित कर चुका हूं। मैंने एक पैसा भी अपने काम में नहीं लिया।"

गांधीजी बोले, "यह सच हो सकता है, लेकिन आपको पैसे तो भरने ही होंगे। सार्वजनिक काम में अव्यवस्था ठीक नहीं होती।"

मंत्री ने कहा, "लेकिन मैं पैसे कहां से भरूं ?"

गांधीजी बोले, "यह मैं नहीं जानता। कुछ भी करके तुम्हें पैसे भरने चाहिए।"

उस युवक की आंखों में आंसू आ गये। दीनबन्धु एन्ड्रयूज पास ही बैठे थे। बोले, "बापू, यह युवक पछता रहा है। इससे आप इतनी कठोरता से क्यों बोलते हैं ?"

गांधीजी ने कहा, "पश्चात्ताप केवल मन में होने से क्या होता है! असली पश्चात्ताप तभी होता है जब दोष का परिमार्जन हो। इस युवक को अपनी भूल सुधारनी चाहिए। यह जन-सेवक है।"

सबको कुरते चाहिए

एक बार गांधीजी एक स्कूल देखने गये। उन दिनों वे लंगोटी पहनने लगे थे। कन्धे पर एक चादर डाल लेते थे। उन्हें इस रूप में देखकर एक बच्चे ने कुछ कहा, परन्तु शिक्षक ने उसे रोक दिया। गांधीजी सबकुछ देख रहे थे। उस बच्चे से बोले, "तुम कुछ कहना चाहते हो ?"

वह बच्चा बोला, "आपने कुरता क्यों नहीं पहना ? मैं अपनी मां से कहूंगा, वह आपके लिए कुरता सीं देगी। आप पहनेंगे न ?"

गांधीजी बोले, "जरूर पहनूंगा, लेकिन एक शर्त है, बेटे, मैं अकेला नहीं हूं।"

बच्चे ने पूछा, "तब आपको कितने कुरते चाहिए ? दो। मां से कहूंगा, वह आपके लिए दो कुरते सीं देगी।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "दो नहीं, मेरे चालीस करोड़ भाई-बहन हैं। उन सबको कुरते चाहिए। क्या तुम्हारी मां चालीस करोड़ कुरते सीं सकेगी ?"

वह बच्चा शायद कुछ समझ नहीं सका। गांधीजी उसकी पीठ थपथपाकर चले गये, लेकिन शिक्षकों ने तो सबकुछ समझ ही लिया था।

अब आपको नींद आ जायगी

ब्रिटेन के सुप्रसिद्ध मजदूर नेता श्री फेनर ब्रोकवे भारत आये हुए थे। मद्रास पहुंचने पर वह अचानक अस्वस्थ हो गये। गांधीजी भी उन दिनों मद्रास ही थे। वे उन्हें देखने अस्पताल गये। फेनर ब्रोकवे के पास जाकर बोले, "मैं आपसे मिलने आया हूं। सुना है, आपको बहुत तकलीफ हो रही है। क्या बात है ?"

फेनर ब्रोकवे ने उत्तर दिया, "आप आये, आपकी बड़ी कृपा है। मैं क्या कहूं, मुझे बड़ी बेचैनी अनुभव हो रही है।"

गांधीजी ने पूछा, "आखिर इस बेचैनी का कुछ कारण तो होगा ही।"

फेनर ब्रोकवे ने उत्तर दिया, "जीहां, कारण तो है। नींद बिलकुल नहीं आती। जरा नींद आ जाय तो कितना अच्छा हो।"

गांधीजी बोले, "यह तो आप ठीक कहते हैं। नींद सचमुच रसायन है।"

इतना कहकर उन्होंने बड़े प्रेम-भाव से उनके माथे पर हाथ रखा और आंखें बन्द कर लीं। दूसरे ही क्षण लगा, जैसे वे समाधिस्थ हो गये हैं और अपने ईश्वर से प्रार्थना कर रहे हैं। कुछ देर वे इसी स्थिति में खड़े रहे। फिर आंखें खोलकर बोले, "अब आपको नींद आ जायगी और आप आराम अनुभव करेंगे।"

इतना कहकर गांधीजी लौट आये। फेनर ब्रोकवे ने अपनी पुस्तक 'पचास वर्ष का समाजवादी जीवन का इतिहास' में

लिखा है, 'कितना आश्चर्य है कि गांधीजी गये और कुछ ही देर में मुझे एकदम गहरी नींद आ गई। नींद खुली तो मैं कैसी स्फूर्ति अनुभव कर रहा था !'

: ४० :

अब यह सोने की चूड़ियां न पहनेगी

बंगाल के सुप्रसिद्ध कांग्रेसी नेता बाबू श्यामसुन्दर चक्रवर्ती की धेवती रानीबाला कोई दस वर्ष की रही होगी। अपने स्वभाव के अनुसार गांधीजी उसके साथ हास्य-विनोद कर रहे थे। उसके हाथ में सोने की छः चूड़ियां थीं। उन्हें देखकर वह बोले, "तुम्हारे नन्हें-नन्हें हाथों में इतनी भारी-भारी चूड़ियां !"

रानीबाला तुरन्त उनको उतारने लगी। उसके नाना ने भी उसे प्रोत्साहित करते हुए कहा, "हां-हां, ये चूड़ियां गांधीजी को दे दो।"

गांधीजी को लगा, जैसे यह उदारता बहुत उचित नहीं है, क्योंकि आखिर ये चूड़ियां बाबू श्यामसुन्दर चक्रवर्ती की तो हैं नहीं। चक्रवर्ती महोदय शायद गांधीजी के मन की यह बात भांप गये। बोले, "आप मेरी बेटी और दामाद को नहीं जानते। रानी-बाला ने ये चूड़ियां आपको दे दी हैं, यह जानकर मेरी बेटी बहुत प्रसन्न होगी और मेरा दामाद तो बहुत उदार है। वह गरीबों की मदद करता है।"

गांधीजी ने यह सब मजाक में ही कहा था, पर उनका

उद्देश्य गहनों के प्रति अरुचि पैदा करना तो था ही। वह लोगों के मन में गरीबों की सहायता करने की इच्छा भी पैदा करना चाहते थे। फिर भी उन्होंने चूड़ियां लौटाने की कोशिश की, लेकिन श्यामबाबू नहीं माने। तब गांधीजी बोले, "लेकिन अब रानी सोने की नई चूड़ियां नहीं पहनेगी। हां, वह शंख की चूड़ियां पहन सकती है। इसी शर्त पर मैं इन्हें ले सकता हूं।"

नन्हीं रानीबाला और उसके नाना श्यामबाबू दोनों ने सहर्ष उनकी यह शर्त स्वीकार कर ली।

: ४१ :

सब चीज़ें व्यवस्थित और स्वच्छ रखना

एक दिन गांधीजी ने आदेश दिया कि रसोईघर में भोजन करनेवाले व्यक्तियों के जूठे बर्तन प्रतिदिन बारी-बारी से दो या तीन व्यक्ति मांजा करें। ऐसा करने से लोगों में प्रेमभाव बढ़ेगा और एक-दूसरे के बर्तन मांजने में जो घृणा वे अनुभव करते हैं, वह दूर हो जायगी। समय भी बचेगा।

उन दिनों रसोईघर की व्यवस्था बलवन्तसिंह देखते थे। उन्हें यह आदेश बहुत अच्छा नहीं लगा। उन्हें डर था कि ऐसा करने से और भी अव्यवस्था फैलेगी।

गांधीजी बोले, "मेरा उद्देश्य अव्यवस्था में व्यवस्था लाना है। अच्छा, सबसे पहले मैं और बा ही इस काम का श्रीगणेश करेंगे।"

और वे बा को लेकर तुरन्त बर्तन मांजने की जगह पर जाकर बैठ गये। उन्होंने सबसे कहा, "आप लोग अपने बर्तन यहां पर रख दें और हाथ धोकर चले जायं।"

लोग घबराये, परन्तु वे जानते थे कि गांधीजी जो कह देते हैं, वही करते हैं। इसलिए वे अपने-अपने बर्तन वहीं छोड़कर चले गये। गांधीजी और बा दोनों बड़े मनोयोग से बर्तन मांजने लगे। बलवन्तसिंह बराबर सोच रहे थे कि कैसे गांधीजी को यह काम छोड़ने के लिए मनावें, लेकिन साथ ही उन्हें ऐसा भी लग रहा था कि जब गांधीजी और बा इस तरह का काम कर सकते हैं तो हमें भी मन में किसी भी काम के लिए छोटे-बड़े का भेदभाव नहीं रखना चाहिए।

उधर गांधीजी और बा में होड़ लग रही थी कि किसका बर्तन अधिक चमकता है। गांधीजी बर्तन साफ करते जाते और कहते, "क्यों बलवन्तसिंह, कैसा साफ हुआ है? तुम डरते क्यों हो?" आदमी निश्चय करे तो क्या नहीं कर सकता? आखिर स्त्रियां घर में सबके जूठे बर्तन साफ करती ही हैं। यह आश्रम हमारा बड़ा कुटुम्ब है! हमें तो स्त्री-पुरुष का भेद मिटाना है। इसीलिए तो रसोईघर का भार तुम पर सौंपा है। मैंने जीवन में बहुत प्रयोग किये हैं और मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि सामूहिक रसोईघर चलाने में जो कुटुम्ब-भावना बढ़ती है वह और किसी प्रकार नहीं बढ़ती। जो रसोईघर चलाता है उसका दायित्व बहुत अधिक होता है। सब चीज़ों को व्यवस्थित और स्वच्छ रखना और जितने भोजन करनेवाले हैं उनको भगवान समझ कर, प्रेम से खिलाना, यह आध्यात्मिक प्रगति की बड़ी साधना है।

तुम इसमें पास हो जाओगे तो मैं समझूंगा कि तुम सेवा कर सकते हो।"

: ४२ :

ऐसा आदमी किस काम का

एक बार गांधीजी देहरादून में महिलाओं की एक सभा में भाषण दे रहे थे। वहां पर उन्हें थैली भी भेंट की गई। भाषण देने के उपरान्त वे बोले, "मैं तो गहने भी ले सकता हूं। दरिद्र-नारायण के लिए अंगूठी भी ले सकता हूं और चूड़ी भी ले सकता हूं। इन्हें देने में पुरुषों से पूछने की कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि यह तो स्त्री-धन है। इसलिए देर क्यों की जाय ? आप सब थोड़े-थोड़े गहने मुझे दे सकती हैं। मेरे पास आने की ज़रूरत नहीं है। मैं ही आपके पास आकर ले लूंगा।"

उस दिन गांधीजी को बहुत-कुछ मिला, इतना कि वे सम्भाल भी न सके। काफी कुछ इधर-उधर बिखर गया। इसीलिए सभा से लौटते समय उन्होंने श्री महावीर त्यागी से कहा, "अपने सामने फर्श को खूब अच्छी तरह झाड़कर रुपये और गहने बटोरना, अच्छा।"

कहकर वे चले गये। त्यागीजी ने सबसे पहले पण्डाल को खाली करवाया। फिर मुड़े-तुड़े नोट, दुवन्नी, चवन्नी, अठन्नी आदि सिक्के और छोटे-छोटे गहने—नथ, बाली, बुन्दे, चूड़ियां जो इधर-उधर बिखरे पड़े थे, उन सबको इकट्ठा करके सम्भाला

और कैम्प में पहुंचा दिया।

रात को प्रार्थना के बाद गांधीजी ने त्यागीजी को बुला भेजा। त्यागीजी बहुत खुश थे। शायद गांधीजी ने शाबाशी देने के लिए बुलाया है ! लेकिन जब वे वहां पहुंचे तो गांधीजी ने कहा, "मैंने कहा था कि अपने सामने दरी झाड़कर सारा पैसा इकट्ठा कर लेना। ऐसा लगता है कि तुमने किसी दूसरे को कह दिया, क्योंकि सारी चीज़ें नहीं आईं।"

त्यागीजी बोले, "नहीं बापूजी, मैंने स्वयं ही सारा पण्डाल झाड़ा था।"

गांधीजी ने दृढ़ स्वर में कहा, "ऐसा मत कहो, मुझे तुम्हारा विश्वास नहीं है। तुमने स्वयं नहीं देखा। ऐसा आदमी किस काम का, जो अपनी जिम्मेदारी दूसरे पर डाल दे ! तुम्हें स्वयं देखना चाहिए था। मैंने तो तुम्हारे भरोसे सबकुछ छोड़ दिया था।"

त्यागीजी घबराकर बोले, "बापू, आपसे किसने कहा कि मैं वहां नहीं था ?"

गांधीजी ने तुरन्त एक सोने का बुन्दा निकाल कर त्यागीजी को दिखाया और कहा, "यह बुन्दा कहता है कि तुम वहां नहीं थे। भला कोई स्त्री मुझे एक बुन्दा देगी और दूसरा अपने कान में रखेगी ? इसका जोड़ीदार कहां है ? अगर आंख खोल कर देखते तो मिलता न ! जो जनता के पैसे के साथ लापरवाही करता है, वह भरोसे का आदमी नहीं हो सकता। मेरे पास अपनी कोई पूंजी नहीं है। मैं इस नुकसान को कहां से भरूंगा ? जबतक वह बुन्दा नहीं मिलता वहां जाकर झाड़ू लगाओ। जाओ।"

रात हो गई थी। लताड़ खाकर त्यागीजी पंडाल में पहुंचे।

गैस के हंडे मंगवाये। टोर्च लीं। कुछ मित्रों को साथ लिया। दरी, चटाई सबकुछ झाड़ा-बुहारा। भाग्य की बात कि वह बुन्दा मिल गया। उसके साथ मिले कुछ नोट, कुछ रुपये-पैसे, एक-दो अंगूठी, छल्ले, चांदी के बाले, आदि-आदि। लगभग ढाई सौ रुपये का सामान होगा।

गांधीजी की निगाह कितनी तेज थी!

: ४३ :

हमारा मतलब समय पर रवाना होने से है

उड़ीसा यात्रा में काकासाहब कालेलकर गांधीजी के साथ थे। घूमते-घूमते वे बालसोर पहुंचे। वहां से उन्हें भद्रक जाना था। वहां एक सभा का प्रबन्ध किया गया था। परन्तु किसी कारणवश गांधीजी का वहां जाना सम्भव नहीं हो सका। उन्होंने काकासाहब से कहा, "मैं नहीं जा सकता, लेकिन तुम चले जाओ और मेरा सन्देशा सभा को सुना दो।"

काकासाहब तैयार हो गये, लेकिन उन्हें ले जाने के लिए कोई नहीं आया। राह देखते-देखते एक घण्टा बीत गया। तभी गांधीजी ने उन्हें देख लिया। उन्होंने अचरज से पूछा, "क्यों, गये नहीं?"

काकासाहब ने कहा, "मैं तो तैयार बैठा हूं। कोई मुझे ले जाय तब न?"

यह सुनकर गांधीजी बड़े नाराज़ हुए। बोले, "इस तरह से

काम नहीं होते। समय होते ही तुम्हें चल देना चाहिए। मोटर न मिली तो क्या हुआ, पैदल ही चलते। दो दिन लगते तो लग जाते। हमारा मतलब गन्तव्य स्थान पर पहुंचने से नहीं है, समय पर रवाना होने से है।"

काकासाहब बड़े लज्जित हुए और उसी क्षण चल पड़े।

: ४४ :

यही तो पवित्र दान है

खादी-यात्रा के समय दक्षिण के बाद गांधीजी उड़ीसा गये थे। घूमते-घूमते वे ईटामाटी नाम के एक गांव में पहुंचे। वहां उनका व्याख्यान हुआ और उसके बाद, जैसा कि होता था, सब लोग चन्दा और भेंट लेकर आये।

प्रायः सभी स्थानों पर रुपया-पैसा और गहने आदि दिये जाते थे, लेकिन यहां दूसरा ही दृश्य देखने में आया। कोई व्यक्ति कुम्हड़ा लाया था, कोई बिजौरा, कोई बैंगन और कोई जंगल की दूसरी भाजी। कुछ गरीबों ने अपने चिथड़ों में से खोल-खोलकर कुछ पैसे दिये। काकासाहब कालेलकर घूम-घूमकर वे पैसे इकट्ठे कर रहे थे। उन पैसों के जंग से उनके हाथ हरे हो गये। उन्होंने अपने हाथ बापू को दिखलाये। वे कुछ कह न सके, क्योंकि उनका मन भीग आया था। उस क्षण तो गांधीजी ने कुछ नहीं कहा। उस दृश्य ने मानो सभी को अभिभूत कर दिया था।

अगले दिन सवेरे के समय दोनों घूमने के लिए निकले। रास्ता छोड़कर वे खेतों में घूमने लगे। उसी समय गांधीजी गम्भीर होकर बोले, "कितना दारिद्रय और दैन्य है यहां! क्या किया जाय इन लोगों के लिए। जी चाहता है कि अपनी मरण की घड़ी में यहीं आकर इन लोगों के बीच में मरूं। उस समय जो लोग मुझसे मिलने के लिए यहां आयंगे वे इन लोगों की करुण दशा देखेंगे। तब किसी-न-किसी का हृदय तो पसीजेगा ही और वह इनकी सेवा के लिए यहां आकर बस जायगा।"

ऐसा करुण दृश्य और कहीं शायद ही देखने को मिले। लेकिन जब वे चारबटिया ग्राम पहुंचे तो स्तब्ध रह गये। सभा में बहुत थोड़े लोग आये थे। जो आये थे उनमें से किसीके मुंह पर भी चैतन्य नहीं था। थी बस प्रेत जैसी शून्यता।

गांधीजी ने यहां भी चन्दे के लिए अपील की। उन लोगों ने कुछ-न-कुछ दिया ही। वही जंग लगे पैसे। काकासाहब के हाथ फिर हरे हो गये। इन लोगों ने रुपये तो कभी देखे ही नहीं थे। तांबे के पैसे ही उनका सबसे बड़ा धन था। जब कभी उन्हें कोई पैसा मिल जाता था तो वे उसे खर्च करने की हिम्मत नहीं कर पाते थे। इसीलिए बहुत दिन तक बांधे रहने या धरती में गाड़ देने के कारण उसपर जंग लग जाता था। काकासाहब ने कहा, "इन लोगों के पैसे लेकर क्या होगा?"

गांधीजी बोले, "यही तो पवित्र दान है। यह हमारे लिए दीक्षा है। इसके द्वारा इन निराश लोगों के हृदय में आशा का अंकुर उगा है। यह पैसा उसी आशा का प्रतीक है। इन्हें विश्वास हो गया है कि एक दिन हमारा भी उद्धार होगा।"

इसीका नाम है अंधा प्रेम

उन दिनों गांधीजी बिहार में काम कर रहे थे। अचानक वायसराय ने उन्हें बुला भेजा। अनुरोध किया कि वे हवाई जहाज से आयें। गांधीजी ने कहा, "जिस सवारी में करोड़ों गरीब लोग सफर नहीं कर सकते, उसमें मैं कैसे बैठूं ?"

उन्होंने रेल के तीसरे दर्जे से ही जाना तय किया। मनु-बहन को बुलाकर बोले, "मेरे साथ सिर्फ तुझको चलना है। सामान भी कम-से-कम लेना और तीसरे दर्जे का एक छोटे-से-छोटा डिब्बा देख लेना।"

सामान तो मनुबहन ने कम-से-कम लिया, लेकिन जो डिब्बा चुना, वह दो भागों वाला था। एक में सामान रखा और दूसरा गांधीजी के सोने-बैठने के लिए रहा। ऐसा करते समय मनु के मन में उनके आराम का विचार था। हर स्टेशन पर भीड़ होगी। फिर हरिजनों के लिए पैसा इकट्ठा करना होता है। रसोई का काम भी उसी कमरे में होगा तो वह घड़ी भर आराम नहीं कर सकेंगे। यही बातें उसने सोचीं।

पटना से गाड़ी सुबह साढ़े-नौ बजे रवाना हुई। गर्मी के दिन थे। उन दिनों गांधीजी दस बजे भोजन करते थे। भोजन की तैयारी करने के बाद मनु उनके पास आई। वे लिख रहे थे। उसे देखकर पूछा, "कहां थी ?"

मनु बोली, "उधर खाना तैयार कर रही थी।"

गांधीजी ने कहा, "जरा खिड़की के बाहर तो देख।"

मनु ने बाहर झांका। कई लोग दरवाजा पकड़े लटक रहे हैं। वह सबकुछ समझ गई। गांधीजी ने उसे एक मीठी-सी झिड़की दी और पूछा, "इस दूसरे कमरे के लिए तूने कहा था ?"

मनु बोली, "जीहां, मेरा विचार था कि यदि इसी कमरे में सब काम करूंगी तो आपको कष्ट होगा।"

गांधीजी ने कहा, "कितनी कमजोर दलील है। इसीका नाम है अन्धा-प्रेम। यह तो तूने सिर्फ दूसरा कमरा मांगा, लेकिन अगर सैलून भी मांगती तो वह भी मिल जाता। मगर क्या वह तुझको शोभा देता ? यह दूसरा कमरा मांगना भी सैलून मांगने के बराबर है।"

गांधीजी बोल रहे थे और मनु की आंखों से पानी बह रहा था। उन्होंने कहा, "अगर तू मेरी बात समझती है तो आंखों में यह पानी नहीं आना चाहिए। जा, सब सामान इस कमरे में ले आ। गाड़ी जब रुके तब स्टेशन-मास्टर को बुलाना।"

मनु ने तुरन्त वैसा ही किया। उसके मन में धुकड़-पुकड़ मच रही थी। न जाने अब गांधीजी क्या करेंगे ! कहीं वे मेरी भूल के लिए उपवास न कर बैठें !

यह सोचते-सोचते स्टेशन आ गया। स्टेशनमास्टर भी आये। गांधीजी ने उनसे कहा, "यह लड़की मेरी पोती है। शायद अभी मुझे समझी नहीं। इसीलिए दो कमरे छांट लिये। यह दोष इसका नहीं है, मेरा है। मेरी सीख में कुछ कमी है। अब हमने दूसरा कमरा खाली कर दिया है। जो लोग बाहर लटक रहे हैं उनको उसमें बैठाइये। तभी मेरा दुख कम होगा।"

स्टेशनमास्टर ने बहुत समझाया, मिन्नतें कीं, पर वे टस-से-मस न हुए। अन्त में स्टेशनमास्टर बोले, "मैं उनके लिए दूसरा डिब्बा लगवाए देता हूं।"

गांधीजी ने कहा, "हां, दूसरा डिब्बा तो लगवा ही दीजिये, मगर इसका भी उपयोग कीजिये। जिस चीज की जरूरत न हो उसका उपयोग करना हिंसा है। आप सुविधाओं का दुरुपयोग करवाना चाहते हैं। लड़की को बिगाड़ना चाहते हैं।"

बेचारा स्टेशनमास्टर! शर्म से उसकी गर्दन गड़ गई। उसे गांधीजी का कहना मानना पड़ा।

: ४६ :

उस पैंसिल को मैं कैसे खो सकता हूं?

गांधीजी मद्रास में श्री नटेसन के मेहमान थे। एक दिन सुबह वह दीवानखाने में बैठे हुए पेंसिल से कुछ लिख रहे थे। उसी समय श्री नटेसन का छोटा लड़का वहां आया। देखा, गांधीजी जिस पेंसिल से लिख रहे हैं वह बहुत छोटी है। बाल-सुलभ उत्सुकता से वह पूछ बैठा, "आप इतनी छोटी पैंसिल से क्यों लिख रहे हैं? बड़े आदमी तो बड़ी पैंसिल से लिखा करते हैं।"

गांधीजी हंसे और कहा, "मुझे छोटी पैंसिल से लिखना अच्छा लगता है, लेकिन क्या तुम्हारे पास बड़ी पैंसिल है?"

बालक बोला, "है क्यों नहीं! मेरी पैंसिल बड़ी चमकीली है। लाऊं?"

यह कहकर बालक भागा हुआ अन्दर गया और कुछ ही देर बाद अपनी पेंसिल लेकर लौट आया। बोला, "देखिये, है न यह आपकी पेंसिल से बड़ी और चमकीली ?"

गांधीजी विनोद भरे स्वर में बोले, "है तो, लेकिन क्या तुम इसे मेरी पेंसिल से बदलोगे ?"

बालक ने एक क्षण सोचा। फिर कहा, "नहीं, मैं आपको वैसे ही दे दूंगा। लेकिन आप इसे कभी खोइयेगा मत।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "तुम्हारी बात मंजूर है। जबतक यह पेंसिल काम देगी तबतक मैं इससे लिखता रहूंगा।"

बहुत दिन बीत गये। उसी वर्ष बम्बई में कांग्रेस का अधिवेशन था। एक दिन काकासाहब कालेलकर गांधीजी के पास बैठे हुए थे। उन्हें कहीं जाना था। डेस्क पर रखी हुई सब चीजें संभालकर रखने लगे। सहसा काकासाहब ने देखा कि गांधीजी कोई चीज ढूंढ़ रहे हैं और उसके न मिल पाने पर वे परेशान हो उठे हैं। उन्होंने पूछा, "बापूजी, क्या ढूंढ़ रहे हैं ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "अपनी पेंसिल ढूंढ़ रहा हूं। बहुत छोटी-सी है।"

काकासाहब ने उनका समय बचाने की दृष्टि से अपनी जेब से एक पेंसिल निकाली और कहा, "आप इसे ले लीजिये।"

गांधीजी बोले, "नहीं-नहीं, मुझे वही मेरी छोटी पेंसिल चाहिए।"

काकासाहब ने पूछा, "उस पेंसिल में ऐसी क्या विशेषता है, जो आप अपना समय इस प्रकार बेकार गंवा रहे हैं ?"

गांधीजी बोले, "तुम्हें नहीं मालूम, वह छोटी-सी पेंसिल

मुझे मद्रास में नटेसन के छोटे बच्चे ने दी थी। बड़े प्यार से वह उसे ले आया था। उसे मैं कैसे खो सकता हूं?"

यह सुनकर काकासाहब गांधीजी के साथ उस पैंसिल को ढूंढ़ने में लग गये। जबतक वह नहीं मिली, गांधीजी शान्त नहीं हुए। वह दो इंच से भी कुछ कम ही थी।

: ४७ :

तो मैं अभी चलता हूं

उन दिनों कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था। गांधीजी किसी काम से दिल्ली आए। उनकी गाड़ी सुबह चार बजे स्टेशन पर पहुंचती थी। श्री घनश्यामदास बिरला उन्हें लेने के लिए स्टेशन गये। वहां पहुंचने पर उन्हें पता लगा कि गांधीजी एक घण्टे बाद ही अहमदाबाद चले जायंगे। उनके गाड़ी से उतरते ही बिरलाजी ने पूछा, "एक दिन ठहर नहीं सकते?"

गांधीजी ने कहा, "नहीं, जाना बहुत आवश्यक है।"

यह सुनकर बिरलाजी निराश हो गये। गांधीजी ने पूछा, "क्यों, क्या बात है?"

बिरलाजी ने कहा, "घर में कोई मृत्यु-शैया पर है। वह आपके दर्शन करना चाहती है।"

गांधीजी ने तुरन्त कहा, "तो मैं अभी चलता हूं।"

बिरलाजी बोले, "समय बहुत थोड़ा है। इस जाड़े में ले जाकर आपको कष्ट नहीं देना चाहता।"

उन दिनों खुली मोटरें होती थीं। खूब ठंडी हवा चल रही थी। फिर भी गांधीजी नहीं माने। उनके आग्रह करने के कारण बिरलाजी लाचार हो गये और उन्हें अपने घर ले गये। वह स्थान दिल्ली से कोई पन्दह मील दूर था। गांधीजी ने रोगी को देखा, उसे सान्त्वना दी और फिर दिल्ली छावनी जाकर अपनी गाड़ी पकड़ी।

बिरलाजी चकित रह गये। इतना बड़ा व्यक्ति उनकी जरा-सी प्रार्थना पर कड़ाके के जाड़े में इतना कष्ट उठा सकता है! पर यह उनकी आत्मीयता ही तो थी, जो लोगों को पानी-पानी कर देती थी।

वह बीमार और कोई नहीं, श्री घनश्यामदास बिरला की धर्मपत्नी थीं।

: ४८ :

मेरा पुण्य तूने ले लिया

नोआखाली में गांधीजी पैदल गांव-गांव घूम रहे थे। वह दुखियों के आंसू पोंछते थे। उनमें जीने की प्रेरणा पैदा करते थे। वह उनके मन से डर को निकाल देना चाहते थे। इसीलिए उस आग में स्वयं भी अकेले ही घूम रहे थे।

वहां की पगडंडियां बड़ी संकरी थीं, इतनी कि दो आदमी एक साथ नहीं चल सकते थे। इस पर वे गन्दी भी बहुत थीं। जगह-जगह थूक और मल पड़ा रहता था। यह देखकर गांधीजी

बहुत दुखी होते, लेकिन फिर भी चलते रहते।

एक दिन चलते-चलते वे रुके। सामने मैला पड़ा था। उन्होंने आस-पास से सूखे पत्ते बटोरे और अपने हाथ से वह मैला साफ कर दिया। गांव के लोग चकित हो देखते रह गये। मनु कुछ पीछे थी। पास आकर उसने यह दृश्य देखा। क्रोध में भरकर बोली, "बापूजी, आप मुझे क्यों शर्मिन्दा करते हैं? आपने मुझसे क्यों नहीं कहा? अपने आप ही यह क्यों साफ किया?"

गांधीजी हंसकर बोले, "तू नहीं जानती। ऐसे काम करने में मुझे कितनी खुशी होती है। तुझसे कहने के बजाय अपने-आप करने मे कम तकलीफ है।"

मनु ने कहा, "मगर गांव के लोग तो देख रहे हैं।"

गांधीजी बोले, "आज की इस बात से लोगों को शिक्षा मिलेगी। कल से मुझे इस तरह के गन्दे रास्ते साफ न करने पड़ेंगे। यह कोई छोटा काम नहीं है।"

मनु ने कहा, "मान लीजिये गांववाले कल तो रास्ता साफ कर देंगे। फिर न करें तब?"

गांधीजी ने तुरन्त उत्तर दिया, "तब मैं तुझको देखने के लिए भेजूंगा। अगर राह इसी तरह गन्दी मिली तो फिर मैं साफ करने के लिए आऊंगा।"

दूसरे दिन उन्होंने सचमुच मनु को देखने के लिए भेजा। रास्ता उसी तरह गन्दा था, लेकिन मनु गांधीजी से कहने के लिए नहीं लौटी। स्वयं उसे साफ करने लगी। यह देखकर गांव-वाले लज्जित हुए और वे भी उसके साथ सफाई करने लगे। उन्होंने वचन दिया कि आगे से वे ये रास्ते अपने-आप साफ

कर लेंगे।

लौटकर मनु ने जब यह कहानी गांधीजी को सुनाई तो वे बोले, "अरे, तो मेरा पुण्य तूने ले लिया! यह रास्ता तो मुझे साफ करना था। खैर, दो काम हो गये। एक तो सफाई रहेगी, दूसरे अगर लोग वचन पालेंगे तो उनको सच्चाई का सबक मिल जायगा।"

: ४६

मैं फरिश्ता नहीं, छोटा-सा सेवक हूं

नोआखाली-यात्रा के समय की बात है। गांधीजी चलते-चलते एक गांव में पहुंचे। वहां किसी परिवार में नौ-दस वर्ष की एक लड़की बहुत बीमार थी। उसके मोतीझरा निकला था। उसीके साथ निमोनिया भी हो गया था। बेचारी बहुत दुर्बल हो गई थी। मनु को साथ लेकर गांधीजी उसे देखने गये। लड़की के पास घर की और स्त्रियां भी बैठी हुई थीं। गांधीजी को आता देखकर वे अन्दर चली गईं। वे पर्दा करती थीं।

बेचारी बीमार लड़की अकेली रह गई। झोंपड़ी के बाहरी भाग में उसकी चारपाई थी। गांव में रोगी मैले-कुचैले कपड़ों में लिपटे गंदी-से-गंदी जगह में पड़े रहते। वही हालत उस लड़की की थी। मनु उन स्त्रियों को समझाने के लिए घर के भीतर गई। कहा, "तुम्हारे आंगन में एक महान संत पुरुष पधारे हैं। बाहर आकर उनके दर्शन तो करो।"

लेकिन मनु की दृष्टि में जो महान पुरुष थे, वे ही उनकी दृष्टि में दुश्मन थे। उनके मन में गांधीजी के लिए रंचमात्र भी आदर नहीं था। स्त्रियों को समझाने के बाद जब मनु बाहर आई तो देखा, गांधीजी ने लड़की के बिस्तर की मैली चादर हटाकर उसपर अपनी ओढ़ी हुई साफ चादर बिछा दी है। अपने छोटे से रूमाल से उसकी नाक साफ कर दी है। पानी से उसका मुंह धो दिया है। अपना शाल उसे उढ़ा दिया है और कड़ाके की सर्दी में खुले बदन खड़े-खड़े रोगी के सिर पर प्रेम से हाथ फेर रहे हैं।

इतना ही नहीं, बाद में दोपहर को दो-तीन बार उस लड़की को शहद और पानी पिलाने के लिए उन्होंने मनु को वहां भेजा। उसके पेट और सिर पर मिट्टी की पट्टी रखने के लिए भी कहा।

मनु ने ऐसा ही किया। उसी रात को उस बच्ची का बुखार उतर गया। अब उस घर के व्यक्ति, जो गांधीजी को अपना दुश्मन समझ रहे थे, अत्यन्त भक्तिभाव से उन्हें प्रणाम करने आए। बोले, "आप सचमुच खुदा के फरिश्ते हैं। हमारी बेटी के लिए आपने जो कुछ किया, उसके बदले में हम आपकी क्या खिदमत कर सकते हैं ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "मैं न तो फरिश्ता हूं और न पैगम्बर। मैं तो एक छोटा-सा सेवक हूं। इस बच्ची का बुखार उतर गया, इसका श्रेय मुझे नहीं है। मैंने इसकी सफाई की। इसके पेट में ताकत देने वाली थोड़ी-सी खुराक गई, इसीलिए शायद बुखार उतरा है। अगर आप बदला चुकाना चाहते हैं तो निडर बनिये और दूसरों को भी निडर बनाइये। यह दुनिया

खुदा की है। हम सब उसके बच्चे हैं। मेरी यही विनती है कि अपने मन में तुम यही भाव पैदा करो कि इस दुनिया में सभीको जीने-मरने का समान अधिकार है।"

: ५० :

मैं तुम्हारा चेला बनता हूं

आगा खां महल से छूटकर गांधीजी पर्णकुटी में आकर ठहरे। उनकी चप्पलें कई दिन पहले ही टूट गई थीं। मनु ने वे टूटी चप्पलें उनसे बिना पूछे मरम्मत करने से लिए मोची को दे दीं।

देकर लौटी तो देखा कि गांधीजी अपनी चप्पलें ढूंढ़ रहे हैं। मनु को देखकर उन्होंने पूछा, "तूने मेरी चप्पलें कहां रख दी हैं?"

मनु ने कहा, "बापूजी, वे तो मैं मरम्मत के लिए मोची को दे आई हूं।"

गांधीजी ने पूछा, "कुछ मजदूरी भी ठहराई है या महात्मा गांधी की जय!"

मनु ने जवाब दिया, "आठ आने मजदूरी ठहराई है, बापूजी।"

गांधीजी बोले, "लेकिन तू तो एक कौड़ी भी नहीं कमाती और न मैं कमाता हूं। तब मजदूरी के आठ आने कौन देगा?"

मनु सोच में पड़ गई। आखिर मोची से चप्पलें वापस लाने का निर्णय उसे करना पड़ा। लेकिन उस बेचारे को तो सवेरे-

सवेरे यही मजदूरी मिली थी। इसीलिए वह बोला, "सवेरे के समय मेरी यह पहली-पहली बोहनी है। चप्पलें तो मैं अब वापस नहीं दूंगा।"

मनु ने लाचार होकर उससे कहा, "ये चप्पलें महात्मा गांधी की हैं। तुम इन्हें लौटा दो, भाई।"

यह सुनकर मोची गर्व से भर उठा। बोला, "तब तो मैं बड़ा भाग्यवान हूं। ऐसा मौका मुझे बार-बार थोड़े ही मिलने वाला है। मैं बिना मजदूरी लिये ही बना दूंगा। लेकिन चप्पलें लौटाऊंगा कभी नहीं।"

काफी वाद-विवाद के बाद मनु चप्पलें और मोची दोनों को लेकर गांधीजी के पास पहुंची और उन्हें सारी कहानी कह सुनाई। गांधीजी ने मोची से कहा, "तुम्हें तुम्हारा भाग ही तो चाहिए न ? तुम मेरे गुरू बनो। मैं तुम्हारा चेला बनता हूं। मुझे सिखाओ कि चप्पलों की मरम्मत कैसे की जाती है ?"

और गांधीजी सचमुच उस मैले-कुचैले मोची को गुरू बनाकर चप्पल सीने की कला सीखने लगे। वे अपने मिलने वालों से बातें भी करते जाते थे और सीखते भी जाते थे। गुरू-चेले का यह दृश्य देखकर मुलाकाती चकित रह गये। उन्होंने जानना चाहा कि बात क्या है ? गांधीजी बोले, "यह लड़की मुझसे बिना पूछे मेरी चप्पलें मरम्मत करने दे आई थी। इसलिए इसको मुझे सबक सिखाना है और इस मोची को इसका भाग चाहिए, इसलिए मैंने इसे अपना गुरू बना लिया है।"

फिर हंसते हुए उन्होंने कहा, "देखते हैं न आप महात्माओं का खेल!"

ऐसी सफाई हमें रखनी चाहिए

यरवदा जेल में गांधीजी सवेरे नौ बजे सोडा और नीबू लेते थे। उन दिनों सरदार वल्लभभाई पटेल उनके साथ थे। वही उनका यह पेय तैयार करते थे।

एक दिन जब वे यह पेय तैयार कर रहे थे तो सहसा गांधीजी ने कहा, "क्या आपको नर्सिंग का एक कोर्स लेने की जरूरत नहीं है?"

सरदार ने अचकचा कर उनकी ओर देखा। गांधीजी उसी तरह बोले, "देखिये तो, आपने चम्मच ऊपर से पकड़ने के बजाय ठेठ मुंह के पास से पकड़ा है। यह सारा चम्मच गिलास में जायगा, इसलिए उस जगह उसको हाथ से नहीं छूना चाहिए और जिस रूमाल से आप अपना मुंह पोंछते हैं उसी से आपने इस चम्मच को साफ किया है। यह भी नहीं होना चाहिए। आप तो जानते हैं कि नर्स आपरेशन के कमरे में किसी भी चीज को हाथ नहीं लगा सकती। सब चीजों को वह चिमटी या संड़सी से ही उठाती है। हाथ से ले तो उसे बर्खास्त कर दिया जाय। ऐसी ही सफाई हमें भी रखनी चाहिए।"

एक क्षण रुक कर वे फिर बोले, "और पीने के बाद गिलास योंही औंधे नहीं रख देने चाहिए। हम शायद ऐसा इस आशा से करते हैं कि वे धुल जाते होंगे, लेकिन मैं आपसे कहता हूं कि अक्सर वे नहीं धोये जाते।"

मोटर अभी नीलामघर में पहुंचा दो

दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी रंगभेद के विरुद्ध संघर्ष कर रहे थे। उस प्रसंग में उन्हें कई बार जेल जाना पड़ा था। एक बार जब वे छूटे तो उनका स्वागत करने के लिए बहुत से लोग जेल के द्वार पर इकट्ठे हो गये। उनके जर्मन साथी कैलनबैक ने तो उसी दिन एक नई मोटर खरीदी और उनको लेने के लिए वहां आ उपस्थित हुए। ठीक समय पर गांधीजी जेल के द्वार से बाहर आए। सबसे मिले। कैलनबैक ने उनसे कहा, "आइये, अब मोटर में बैठकर चलें।"

गांधीजी ने उस मोटर को देखा। पूछा, "किसकी है?"

कैनलबैक ने उत्तर दिया, "मेरी है। अभी खरीदकर लाया हूं।"

गांधीजी ने पूछा, "क्यों खरीद कर लाये हो?"

कैलनबैक ने किंचित सकुचा कर उत्तर दिया, "आपको ले जाने के लिए खरीद कर लाया हूं। मेरे मन में आया कि आपको नई मोटर में ले जाऊं।"

गांधीजी ने दृढ़ स्वर में कहा, "अच्छा तो कैलनबैक, यह मोटर तुम अभी नीलामघर पहुंचाकर आओ। मैं इसमें नहीं बैठूंगा। मेरे लिए तुम्हारे मन में यह मोह क्यों पैदा हुआ? जब-तक तुम वापस लौटकर नहीं आओगे, मैं यहीं खड़ा रहूंगा।"

बेचारे कैलनबैक! वह इस आदेश की अवहेलना कैसे कर

सकते थे ! मोटर को नीलामघर छोड़कर वह लौटे तबतक गांधीजी दूसरे मित्रों के साथ वहीं खड़े रहे। कैलेनबैक के आने के बाद सब लोग पैदल चलकर आश्रम पहुंचे ।

: ५३ :

मैं जेल में तो हूं, पर कैदी नहीं हूं

गोलमेज परिषद में भाग लेने के बाद गांधीजी जब लन्दन से भारत लौटे तो उन्होंने अपने सामान के प्रति बहुत चिन्ता प्रकट की, विशेषकर उन खिलौनों के लिए, जो बच्चों ने उनकी वर्षगांठ पर भेंट किये थे। छोटे-छोटे ऊनी जानवर, रंगीन मोमबत्तियां और चाक के बनाये हुए चित्र—किंग्सले हाल के आसपास रहनेवाले गरीब बच्चे यही कुछ उन्हें दे सके थे ।

गांधीजी ने कहा, "बच्चों द्वारा दिये गए खिलौने सुरक्षित रहने चाहिए। मैं जो सामान साथ लाया था उसके सिवा सिर्फ इन खिलौनों को ही भारत ले जा रहा हूं।"

वैसे तो उन्हें इससे कहीं अधिक कीमती चीजें भेंट-स्वरूप मिली थीं, परन्तु उन्हें तो उन्होंने अपने नियम के अनुसार उसी समय बांट दिया था। बस, बच्चों द्वारा दिये गए ये खिलौने ही उनकी विशेष सम्पत्ति थी। ये किसीको नहीं दिये जा सकते थे।

उन खिलौनों को वे सुरक्षित अपने साथ भारत ले आये। लौटकर गांधीजी को फिर सत्याग्रह आन्दोलन शुरू करना पड़ा। इसलिए वे तुरंत ही बच्चों को पत्र नहीं लिख सके। जेल पहुंचने

पर जब उन्हें अवसर मिला तब उन्होंने यह पत्र लिखा :
मेरे प्यारे छोटे दोस्तो,

मैं अनेक बार तुम सबको याद करता हूं। उस दिन दोपहर को हम सब एक साथ बैठे थे। उस समय तुम लोगों ने मेरे सवालों का जवाब जिस चपलता से दिया था, वह अभी तक मुझे अच्छी तरह याद है।

मुझे तुमने जिस प्रेम से भेंट भेजी थी, उसका आभार-सूचक पत्र मैं किस्सले हाल से ही लिखना चाहता था, मगर मुझे समय नहीं मिला। अब मैं यह पत्र जेल से लिख रहा हूं।

तुम्हारी इन भेंटों को मैं अपने आश्रम के बच्चों तक पहुंचाना चाहता था, पर मैं आश्रम पहुंच ही नहीं सका।

तुम्हें मैं जेल से पत्र लिखूं, यह तुम्हारे लिए एक विनोद की चीज नहीं है। मैं जेल में तो हूं, परन्तु मैं अनुभव कर रहा हूं कि मैं कैदी नहीं हूं। मैंने कोई बुरा काम किया है, मेरा मन इसकी गवाही नहीं देता।

छोटे-बड़ों को मेरा प्यार।

तुम्हारा,

२०-१-३२   वही जिसे तुम 'गांधी काका' कहते हो

यह पैसा भी तो मेरा ही है

गांधीजी यरवदा-जेल में थे। उनके स्वास्थ्य को देखते हुए यह निश्चित किया गया कि उन्हें मक्खन खाना चाहिए। गांधीजी बोले, "मैं केवल बकरी के दूध का मक्खन ले सकता हूं।"

वह कोई बहुत कठिन काम नहीं था, लेकिन मक्खन आने पर प्रश्न उठा कि उसे किस चीज के साथ लिया जाय ? गांधीजी बोले, "मुझे थोड़ा आटा दीजिये।"

आटा आ गया, लेकिन वह मोटा था। गांधीजी उसे पचा नहीं सकते थे। उन्होंने कहा, "मुझे बारीक आटा चाहिए।"

दस सेर बारीक आटा आ गया। इतना आटा लेकर करते भी क्या ? कुछ समय बाद उन्होंने अनुभव किया कि उन्हें न आटे की आवश्यकता है, न मक्खन की। उन्होंने कहा, "यह आटा ले जाइये और मक्खन भी बन्द कर दीजिये।"

लेकिन जो दे दिया गया था, वह वापस नहीं लिया जा सकता था। अधिकारियों ने सोचा कि हो सकता है, गांधीजी बाद में आवश्यकता अनुभव करें, लेकिन गांधीजी ने उन्हें शान्त भाव से समझाते हुए कहा, "जितनी चिन्ता मुझे अपने पैसे की है, उतनी ही सार्वजनिक धन की भी है। यह पैसा भी तो मेरा ही है।"

सरकारी अधिकारी ने पूछा, "सरकारी खजाने में आपने

कब और कितना पैसा जमा कराया है ?"

गांधीजी ने नम्रता से उत्तर दिया, "आप सरकार से जो वेतन लेते हैं उसका कुछ भाग खजाने में देते हैं, लेकिन मैं तो अपना सबकुछ देता हूं। मेरा श्रम, मेरी बुद्धि, मेरा सर्वस्व।"

: ५५ :

निश्चय करो कि कभी झगड़ोगे नहीं

गांधीजी साबरमती आश्रम में अपने कमरे में बैठे हुए 'नवजीवन' के लिए एक गम्भीर लेख लिख रहे थे। उसी समय आश्रम के कुछ बालक वहां आये और उन्हें प्रणाम करके एक ओर खड़े हो गये। उनकी आयु बारह-चौदह वर्ष के बीच रही होगी। गांधीजी ने उनकी ओर देखा और मुस्कराए। पूछा, "आज सवेरे-ही-सवेरे यह वानर सेना मेरे कमरे पर कैसे आ चढ़ी ?"

एक बालक ने, जो सम्भवतः उनका नेता था, उत्तर दिया, "बापू, आज आपको हमारे साथ साबरमती में नहाने के लिए चलना है।"

यह सुनकर गांधीजी खिलखिलाकर हंस पड़े। बोले, "अरे, वाह रे डिक्टेटर, यह नेताओं की तरह हुक्म देना तूने कहां से सीखा है ?"

बालक कुछ झेंप गया। उसने विनम्र स्वर में कहा, "बापू, आज तो आपको हमारी बात माननी ही होगी। चलिए।"

गांधीजी बोले, "लेकिन आज तो मेरे पास समय नहीं है।

फिर कभी चलूंगा।"

दूसरे बालक ने कहा, "समय तो आपके पास कभी नहीं होता। आप तो हमेशा ही कुछ-न-कुछ करते रहते हैं।"

तीसरा बालक बोल उठा, "बापू, हम आपकी सारी बातें मान लेते हैं। आप क्या हमारी एक बात भी नहीं मानेंगे?"

इतना ही नहीं, कुछ बच्चे दौड़े हुए गये और उनकी धोती-तौलिया आदि ले आये। गांधीजी ने देखा कि छुटकारा मिलनेवाला नहीं है तो बोले, "अच्छा, अगर तुम मेरी एक बात मान लो तो मैं तुम्हारे साथ चल सकता हूं।"

सब बालकों ने एक स्वर में कहा, "हां-हां, बताइए, हम मानेंगे।"

गांधीजी बोले, "मैंने सुना है कि तुम लोग कभी-कभी आपस में लड़ पड़ते हो, एक-दूसरे को मारते हो, कभी-कभी गालियां भी देने लगते हो। क्या, यह बात अच्छी है?"

बालकों ने उत्तर दिया, "जी नहीं, यह तो बुरी बात है। गुस्से में आकर हम ऐसा कर बैठते हैं, लेकिन बाद में पछताते हैं।"

गांधीजी ने कहा, "तो तुम सब आज से यह निश्चय करो कि आपस में झगड़ा नहीं करोगे। प्रेम से रहोगे।"

बच्चों ने उत्तर दिया, "बापूजी, हम ऐसा करने की कोशिश करेंगे और जब कभी हम ऐसा नहीं कर सकेंगे तब आपसे कह देंगे।"

गांधीजी तो यही चाहते थे। वह उन सबके साथ नहाने के लिए साबरमती पर पहुंचे। खूब नहाए। सहसा एक बालक ने

कहा, "बापू, आप तो तैरना भी जानते हैं। जरा तैरकर दिखाइए।"

गांधीजी पानी में कूद पड़े और तैरकर काफी दूर निकल गये। बच्चे खुशी से किलकारियां मारने लगे।

: ५६ :

अपने देश पर यह बोझ नहीं डालना है

गांधीजी यरवदा-जेल में नजरबन्द थे। नजरबन्दों के लिए खर्च की सारी व्यवस्था सरकार करती है। उनके लिए डेढ़ सौ रुपये का प्रबन्ध किया गया। पहले ही दिन सुपरिन्टेन्डेन्ट मेजर मार्टिन उनके उपयोग के लिए फर्नीचर, चाय पीने के प्याले और इसी तरह की आवश्यक वस्तुएं लेकर आ गये। गांधीजी ने कहा, "ये सब आप किसलिए लाये हैं?"

मेजर साहब ने उत्तर दिया, "आपके लिए लाया हूं।"

गांधीजी बोले, "नहीं, आप इन्हें वापस ले जाइये।"

मेजर साहब समझे नहीं। उन्हें ऐसा लगा, जैसे गांधीजी इस सामान को कुछ कम समझते हैं। बोले, "मैंने सरकार को लिख दिया है कि इतने बड़े अतिथि के लिए कम-से-कम तीन सौ रुपये मासिक चाहिए। आशा है, जल्दी ही उसकी स्वीकृति आ जायगी।"

गांधीजी ने कहा, "ठीक है, लेकिन यह सारा पैसा मेरे देश की तिजौरी से ही तो खर्च होगा न? मुझे अपने देश पर यह

बोझ नहीं डालना है। मेरे भोजन का खर्च पेंतीस रुपये मासिक से अधिक नहीं होगा। अगर मेरा स्वास्थ्य अच्छा रहता तो मैं 'सी' क्लास के कैदियों का ही भोजन लेता। मुझे फल खाने पड़ते हैं। बकरी का दूध लेना पड़ता है। यह मेरे लिए लज्जा की बात है।"

जबतक सब चीजें वापस नहीं चली गईं, उन्हें शान्ति नहीं मिली। अपने उपयोग के लिए उन्होंने लोहे की चारपाई, एक गद्दा और 'सी' क्लास के कैदियों को मिलनेवाले कम्बल ही मांगे। बर्तन भी वैसे ही मंगवाए।

कुछ दिन बाद उन्होंने फल लेने भी बन्द कर दिये। बकरी का दूध, खजूर, कुछ किशमिश और उबला हुआ शाक ही लेने लगे। उन्हीं दिनों काकासाहब कालेलकर भी उनके साथ रहने के लिए आये। उन्होंने यह सब देखा तो चिन्तित हुए। लगा, ऐसा करने से गांधीजी का स्वास्थ्य बिगड़ जायगा। इसलिए उन्होंने गांधीजी से आग्रह किया कि वे सन्तरे अवश्य लें।

गांधीजी बोले, "मैं यहां राजबन्दी बनकर बैठा हूं और बाहर लोग कितना कष्ट उठा रहे हैं! लाठीचार्ज हो रहा है और न जाने क्या हो रहा है! ऐसी हालत में मेरा मन बाजार से कीमती फल मंगवाने को नहीं करता।"

काम की चीज मैंने ले ली

गोलमेज परिषद में भाग लेने के लिए गांधीजी पानी के जहाज से इंग्लैण्ड जा रहे थे। जहाज का नाम 'एस० एस० राजपूताना' था। उसके अधिकांश यात्री यूरोपियन थे। उनका एक क्लब था। उस क्लब से एक पत्र प्रकाशित होता था। क्लब का नाम था 'बिल्ली गोट्स' और पत्र का नाम था 'स्कैण्डल-टाइम्स'।

वह पत्र छपता नहीं था, टाइप होता था। यथानाम तथा-गुण। उसमें लोगों के बारे में नाना प्रकार के अपवाद प्रकाशित होते थे। गांधीजी कैसे बच सकते थे! उनके बारे में उस पत्र का एक विशेषांक निकाला गया। उस विशेषांक को लेकर एक गोरा उनके पास पहुंचा। बोला, "मि० गांधी, इस पत्र में आपको श्रद्धांजलि अर्पित की गई है। क्लब के सब सदस्यों की शुभ-कामनाओं सहित यह आपको समर्पित है। आप इसे ध्यानपूर्वक पढ़िए और फिर इसकी सामग्री के सम्बन्ध में अपनी राय दीजिये।"

वह गोरा शराब में धुत था। फिर बोला, "मि० गांधी, मैं अपने कैबिन में व्हिस्की का दूसरा गिलास चढ़ाने के लिए जाऊं, इससे पहले ही आपकी सम्मति मुझे मिल जानी चाहिए।"

गांधीजी ने उस पत्र पर एक नजर डाली। जिस क्लिप में वेपन्ने नत्थी किये गए थे, उसको निकालकर अपने पास रख

लिया और पन्नों को उस व्यक्ति को लौटाते हुए कहा, "इस पत्रिका में से काम की चीज मैंने निकालकर रख ली है। शेष तुम ले जा सकते हो।"

बेचारे गोरे ने ऐसा शान्त व्यक्ति कहां देखा था! विमूढ़-सा होकर वह चला गया।

: ५८ :

इनका पैसा तांबे का नहीं, सोने का है

एक बार गांधीजी उड़ीसा की यात्रा कर रहे थे। इसी यात्रा में एक दिन वे सड़क के रास्ते कटक की ओर रवाना हुए। रास्ते में जंगली प्रदेश पड़ता था। उसी प्रदेश में एक छोटा-सा गांव था 'अनगुल'। उस समय यह प्रदेश 'नोन रेग्यूलेटेड' प्रदेश था, यानी वहां का जिलाधीश अपनी इच्छानुसार नियम चला सकता था। उसने गांधीजी को सार्वजनिक धर्मशाला में ठहरने की आज्ञा नहीं दी। तम्बू लगाकर ही वे ठहर सके।

परन्तु सरकार के विरोध के बावजूद आदिवासी लोग हजारों की संख्या में गांधीजी के दर्शन करने आये। वे लोग बहुत गरीब थे। पैसे-दो पैसे, आने-दो आने, इतनी ही भेंट लेकर वे आये थे और उन पैसों को वे स्वयं गांधीजी के हाथों में रखना चाहते थे।

गांधीजी सहर्ष तैयार हो गये। सात फुट ऊंचे मंच पर वे लगभग तीन घंटे तक बैठे रहे और हाथ बढ़ा-बढ़ा कर पैसे लेते

रहे। उतने समय के लिए वह और सबकुछ भूल गये।

जब सब लोग अपनी भेंट दे चुके तो उन्होंने गम्भीर स्वर में कहा, "इनका एक-एक पैसा मुझे तांबे का नहीं, सोने का लगता है। कितनी मेहनत से इन्होंने ये पैसे इकट्ठे किये हैं! कितनी दूर से ये पैदल चलकर, किस उमंग से, मुझे देने आये हैं! इनमें से एक पैसा भी मैं कैसे लौटा सकता हूं!"

: ५६ :

फलदायक श्रम ही कांग्रेसी करे

गांधीजी प्रत्येक कांग्रेसी के लिए कातना अनिवार्य मानते थे। परन्तु 'स्वराज्य-दल' वाले उनकी यह शर्त स्वीकार नहीं करते थे। जब वे 'अपेंडिसाइटिस' के आपरेशन के बाद जेल से मुक्त कर दिये गए तो उन्होंने 'स्वराज्य दल' और 'अपरिवर्तनवादियों' के मतभेद दूर करने का पूरा प्रयत्न किया। उसी समय पंजाब से 'स्वराज्य दल' के कुछ सदस्य उनसे मिलने आये। इस प्रश्न पर चर्चा होना स्वाभाविक था। सहसा उनमें से एक व्यक्ति ने पूछा, "महात्माजी, कातना अनिवार्य करने में आपका उद्देश्य यही है न कि पढ़े-लिखे लोग भी शरीर श्रम करें?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "हां, एक उद्देश्य तो यह भी है।"

उस व्यक्ति ने कहा, "तब आप सीधे शरीर-श्रम का ही प्रस्ताव कीजिये; लेकिन वह क्या हो, यह चुनने की छूट सदस्य को दे दीजिये।"

गांधीजी मुस्करा उठे। बोले, "आप कहना चाहते हैं कि कोई आध घण्टा चरखा चलाये तो कोई आध घण्टा फुटबाल खेले, कोई लकड़ी काटे। यही न ?"

यह सुनकर सब हँस पड़े। गांधीजी बोले, "यह शरीर-श्रम तो जरूर है, मगर मैं ऐसी प्रतिज्ञा करवाना चाहता हूं कि जो शरीर-श्रम आज हमारे लिए सबसे अधिक फलदायक है, वही प्रत्येक कांग्रेसी करे।"

: ६० :

सेवा का मौका क्यों छोड़ूं

गांधीजी के दिल्ली-प्रवास में मौलाना अबुल कलाम आजाद प्रायः प्रतिदिन उनसे मिलने आया करते थे। उन्हें सिगरेट पीने की आदत थी। जब भी वह आते, मनु सदा एक खाली रकाबी झाड़ने के लिए उनके सामने रख देती थी।

एक बार किसी कारणवश वह ऐसा करना भूल गई। गांधीजी मौलाना साहब के साथ बहुत देर तक हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के सम्बन्ध में गम्भीर बातें करते रहे। एकाएक वह बीच में उठे। मौलाना साहब की समझ में नहीं आया कि आखिर वह एक साथ क्यों उठे। जबतक वह कुछ समझें, तबतक गांधीजी सामने की खिड़की के पास पहुंच गये थे। वहां एक खाली रकाबी रखी हुई थी। चुपचाप लाकर वह उन्होंने मौलाना साहब के सामने रख दी।

मौलाना साहब बहुत लज्जित हुए। गांधीजी हँसते हुए बोले, "मुझे आपकी सेवा करने का कोई मौका मिले तो मैं क्यों छोड़ूं ?"

: ६१ :

पहले इसे नाश्ता कराओ

एक रात की बात है। आश्रम के रसोईघर में एक चोर घुस आया। वह भूखा था या उसका उद्देश्य कुछ और था, यह कोई नहीं जान सका। परन्तु कुछ व्यक्तियों ने उसे पकड़ लिया और एक कोठरी में बन्द कर दिया।

सबेरा हुआ। नित्य कर्मों से निबटकर गांधीजी नाश्ता करने बैठे, तब उस चोर को उनके सामने पेश किया गया। किसने पकड़ा और कैसे पकड़ा, यह सबकुछ सुनने के बाद उन्होंने पूछा, "इसको नाश्ता कराया या नहीं ?"

आश्रमवासी ने उत्तर दिया, "नहीं, बापू।"

गांधीजी ने कहा, "तो पहले इसे नाश्ता कराओ, फिर मेरे पास लाओ।"

आश्रमवासी ने अचरज से कहा, "चोर को नाश्ता कराऊं ?"

"हां।" गांधीजी ने उत्तर दिया। गांधीजी का आदेश था, इसलिए नाश्ता कराना पड़ा, पर चोर भी मनुष्य है, उसे भी भूख लग सकती है और जो व्यक्ति हमारे बन्धन में है, उसे खाने-पिलाने का दायित्व भी हमारा है—यह बात उस आश्रमवासी के

मन में नहीं आई। लेकिन गांधीजी इस बात को कैसे भूल सकते थे ? जब वह चोर फिर उनके सामने आया तो उसे बड़े प्रेम से समझाते हुए उन्होंने कहा, "भाई, तुम्हें चोरी नहीं करनी चाहिए। चोरी करना पाप है। गरीबी के कारण अगर तुम्हें चोरी करनी पड़ती है तो ऐसा कहो, मैं तुम्हारे लिए आश्रम में काम की व्यवस्था कर दूं।"

: ६२ :

हमारे साथ काम के लिए किसने रोका है

एक बार गांधीजी दूसरे नेताओं के साथ किसी गहन समस्या पर विचार कर रहे थे। रात का समय था। अचानक एक सज्जन वहां आ पहुंचे। उनके नाम और काम से सभी परिचित थे। देश और प्रान्त दोनों में जाग्रति लाने के लिए उन्होंने बहुत काम किया था। उन्होंने आते ही गांधीजी से मिलने की इच्छा प्रकट की। उनका संदेशा लेकर एक सज्जन अन्दर गये और लौटकर उन्होंने कहा, "इस समय गांधीजी गम्भीर मंत्रणा में व्यस्त हैं। तुरन्त मिलना सम्भव नहीं होगा।"

यह सुनकर आगन्तुक क्रुद्ध हो उठे और आवेश में आकर बोले, "मैं भी देश का एक सेवक हूं। ऐसी कौन-सी बात हो सकती है, जो मुझसे गुप्त रखी जाय !"

संदेशा ले जानेवाले सज्जन फिर गांधीजी के पास गये। गांधीजी ने कहा, "उन्हें अन्दर भेज दो।"

वे भाई अन्दर गये। गांधीजी बोले, "सुना, आप नाराज हो गये।"

वह बोले, "नाराज होने की तो बात ही थी।"

गांधीजी ने गम्भीरता से कहा, "अच्छा, बताइए, आप इस समय हम लोगों के पास बैठकर हमारी क्या मदद कर सकते हैं? आपको क्या मालूम कि हम किस विषय पर विचार कर रहे हैं। आपने बिना सोचे-समझे ही क्रोध किया है। आपको हम लोगों के साथ काम करने से किसने रोका है? आप खुशी से हम लोगों के साथ रहें, हमारी बात समझें, काम करें और तब राय दें।"

अपनी गलती समझकर वह भाई पछताने लगे।

: ६३ :

मातृभाषा की शिक्षा पाकर वह जाने कितने बड़े विद्वान होते

गांधीजी उड़ीसा का भ्रमण कर रहे थे। किसीने उनसे पूछा, "आप अंग्रेजी शिक्षा का विरोध करते हैं, लेकिन आप इतने बड़े अंग्रेजी पढ़कर ही हुए हैं।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "महाराज, न तो मैं कोई विशेष पढ़ा हुआ हूं और न कोई बड़ा आदमी ही हूं। इसलिए अपने बारे में मैं कुछ नहीं कह सकता। लेकिन हां, इसमें कोई शक

नहीं कि तिलक महाराज ने यदि अंग्रेजी के माध्यम द्वारा शिक्षा न पाकर मातृभाषा के माध्यम से पाई होती तो कौन कह सकता है कि वह जितने बड़े हुए, उससे भी बढ़कर न होते ! अंग्रेजी की शिक्षा पाकर वह गीता के इतने बड़े भाष्यकार हुए । मातृ-भाषा के द्वारा शिक्षा पाकर तो न जाने कितने बड़े विद्वान होते।"

एक क्षण रुककर फिर बोले, "अच्छा, स्वामी शंकराचार्य या तुलसीदासजी क्या अंग्रेजी पढ़े हुए थे ? उनके जैसे महापुरुष संसार में कितने मिलते हैं ! इसमें कोई शक नहीं कि इस देश में अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग भी महान हुए हैं, किन्तु वह अंग्रेजी के कारण ही महान नहीं हुए हैं। हुए भी हों तो उनकी संख्या इतनी कम है कि उंगलियों पर गिनी जा सकती है । प्राचीन काल में हमारे देश में इतने ऋषि-महर्षि हुए, वे सब हमारी ही शिक्षा की उपज थे । जिन लोगों को आप अंग्रेजी पढ़ने के कारण बड़ा हुआ मानते हैं, क्या वे उनसे बढ़कर महान और उनसे अधिक संख्या में हैं ?"

: ६४ :

यह शरीर तो तुम्हारा है न ?

एक बार समाजवादी दल के कुछ सदस्य गांधीजी से मिलने आये । बहुत देर तक बातचीत होती रही । किसीने पूछ लिया, "महात्माजी, किसानों पर बहुत कर्ज है । इससे उन्हें कैसे मुक्त किया जाय ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "किसानों को कर्ज से मुक्त करना सम्भव नहीं। स्वराज्य होने पर भी ऐसा हो सकेगा, मैं नहीं कह सकता। हां, उन्हें आलस्य और फिजूलखर्ची से बचाने का प्रयत्न मैं अवश्य करूंगा।"

इसपर व्यक्तिगत सम्पत्ति की चर्चा चल पड़ी। गांधीजी ने कहा, "स्वराज्य में भी कुछ-न-कुछ व्यक्तिगत सम्पत्ति तो रहेगी ही। ऐसा कोई देश मैं नहीं जानता, जहां किसीके पास व्यक्तिगत सम्पत्ति के नाम पर कुछ भी न हो।"

सहसा एक सज्जन बोल उठे, "रूस में ऐसा नहीं है।"

गांधीजी ने पूछा, "क्या तुम रूस गए हो?"

उन सज्जन ने कहा, "जीहां, गया हूं।"

गांधीजी हंसकर बोले, "तब तो मैं हार गया।"

सब लोग हँस पड़े, लेकिन गांधीजी इतनी आसानी से हारनेवाले नहीं थे। हँसी रुकने पर पूछा, "क्या एक भी समाजवादी ऐसा है, जिसके पास कुछ भी व्यक्तिगत सम्पत्ति न हो?"

उस दल में स्वामी श्रद्धानन्दजी की पौत्री और दिल्ली की एक प्रमुख कार्यकर्त्री बहन सत्यवती भी थीं। वह बोलीं, "हां, मैं ऐसी हूं।"

गांधीजी ने पूछा, "यह शरीर तो तुम्हारी सम्पत्ति है न?"

सत्यवतीबहन ने उत्तर दिया, "जी नहीं, यह शरीर भी समाज का है।"

गांधीजी सहसा गम्भीर हो उठे, "देखो, सम्हलकर बात करो। अगर कोई आदमी तुम्हारी तरफ बुरी निगाह से देखे तो तुम पिस्तौल लेकर खड़ी हो जाओगी या नहीं?"

सब लोग एकबार फिर बड़े जोर से हंस पड़े और बहन सत्यवती कुछ जवाब न दे सकीं।

: ६५ :

जरा से डर के मारे झूठ बोली !

गांधीजी प्रतिदिन दोपहर को गीली मिट्टी की पट्टी पेट पर रखकर सोते थे। मिट्टी बिखर न जाय, इसलिए उसपर वह एक कपड़ा लपेटकर सेफ्टी पिन लगा देते थे।

एक दिन वह पिन भूल से किसी दूसरी जगह रख दी गई। जो लड़की मिट्टी की पट्टी तैयार करती थी उसने पिन को बहुत ढूंढ़ा, पर वह अपने स्थान पर होती तो मिलती। लड़की बहुत परेशान हुई और गांधीजी नाराज होंगे, इस डर से उसने वैसी ही एक दूसरी पिन लगा दी। उस बेचारी को यह बात मालूम नहीं थी कि गांधीजी की पिन एक खास तरह की होती है। उससे खरोंच लगने का डर नहीं होता।

संयोग की बात कि वह पिन किताबों की अलमारी में गांधीजी को मिल गई। दूसरे दिन जब वह लड़की पट्टी बांधने आई तब गांधीजी ने उससे पूछा, "यह पिन कहां से आई ?"

लड़की ने जवाब दिया, "गुसलखाने में गिर गई थी, वहीं से मिली है।"

गांधीजी गम्भीर हो गये। बोले, "देख, वह पिन तो यह है।

तू जरा से डर के कारण एक पिन के लिए झूठ बोली ! उसके बजाय अगर गलती कबूल कर लेती तो नम्रता सीखती।"

: ६६ :

तुम्हीं इन्हें खा लो

आगा खां महल से मुक्त होकर गांधीजी स्वास्थ्य लाभ के लिए जुहू चले गये। उनसे मिलने और दर्शनों को आनेवालों का कोई अन्त नहीं था, पर उनका स्वास्थ्य ऐसा नहीं था कि इस भार को सह सकें। इसलिए श्रीमती सरोजिनी नायडू द्वार पर चौकीदार बनकर बैठ गई थीं। वह किसीको भी अन्दर नहीं आने देती थीं। वैसे उनका अपना स्वास्थ्य भी बहुत अच्छा नहीं था, लेकिन उन्होंने अपनी तनिक भी चिन्ता नहीं की। सिंहनी जिस प्रकार अपने बच्चों की देखभाल करती है, वैसे ही वह गांधीजी की देखभाल करती थीं। गांधीजी ने एक दिन उन्हें बड़े स्नेह से 'अम्मा जान' का नाम दिया था। उसको मानो उन्होंने सार्थक कर दिखाया।

बहुत-से लोग वहां आते थे। उनमें से बहुत को लौटा दिया जाता था। एक दिन एक दस-बारह साल का लड़का आया। उसके कपड़े इतने मैले-कुचैले थे कि लगता था, जैसे वह भिखारी है। वह गांधीजी के दर्शन के लिए सुबह से इन्तजार करता रहा। उनको भेंट करने के लिए वह कुछ ताजे फल भी लाया था।

बड़ी मुश्किल से उसे अन्दर जाने की आज्ञा मिली। गांधी-

जी के पास पहुंचकर उसने उन्हें प्रणाम किया और फल उन्हें भेंट किये। आस-पास जो व्यक्ति थे, उनमें से किसीने उसे भिखारी समझकर ऐसा ही कुछ कह दिया।

बच्चे का स्वाभिमान आहत हो उठा। उसने कहा, "नहीं, महात्माजी, मैं भिखारी नहीं हूं। जबसे मैंने आपकी रिहाई का समाचार सुना है तबसे मैं कुली का काम करता रहा हूं। इतना रुपया कमाकर ही यह छोटी-सी भेंट आपके लिए लाया हूं।"

गांधीजी गद्गद् हो गये। उन्होंने कहा, "यह तुम्हारे परिश्रम के फल हैं। तुम्हीं इन्हें खा लो।"

लड़के ने उत्तर दिया, "नहीं महात्माजी, मैं इन्हें नहीं खाऊंगा। आप खा लेंगे तो मेरा पेट भर जायगा।"

यह कहते-कहते उसका चेहरा दीप्त हो उठा।

: ६७ :

अब मोटी कलम से ही लिखा करूंगा

एक बार गांधीजी का फाउंटेन पैन चोरी चला गया। पैन कीमती था। उसी दिन से उन्होंने निश्चय किया कि अब वह ऐसा कीमती पैन नहीं रखेंगे, जिसे चुराने के लिए किसी का मन ललचा जाय।

वह होल्डर-दवात से लिखने लगे। एक दिन होल्डर की निब टेढ़ी हो गई। मनु नया निब लेने गई। लौटने में उसे दस मिनट लग गये। गांधीजी के पास तो पल-पल का हिसाब रहता

था। अगर उनका एक भी पल बेकार चला जाता तो उनके सारे दिन का कार्यक्रम बिगड़ जाता। मनु जब निब लेकर लौटी तो क्या देखती है, वह चाकू से होल्डर की दूसरी ओर का हिस्सा छील रहे हैं। उसने पूछा, "यह क्या कर रहे हैं, बापूजी?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "अब मेरी कलम की निब कभी नहीं बिगड़ेगी। पुराने जमाने में बच्चों को ऐसी ही कलम से लिखवाते थे। इससे अक्षर भी साफ आते थे और एक पाई भी खर्च नहीं होती थी। आज हम पैसा खर्च करते हैं, फिर भी या तो निब टेढ़ी हो जाती है या पैन चोरी चला जाता है। अब मैं इस तरह की मोटी कलम से लिखा करूंगा। इससे दोनों बातों का सुख होगा। न तो यह चोरी जायगी, न बिगड़ेगी।"

और उसी कलम से गांधीजी ने सबसे पहला पत्र लार्ड माउंटबैटन को लिखा था।

: ६८ :

मैं पेशेवर नटों के नाटक नहीं देखता

बैजवाड़ा में कांग्रेस महासमिति ने तय किया था कि लोकमान्य तिलक के स्मारक में एक करोड़ रुपया इकट्ठा किया जाय। उसी सिलसिले में धन इकट्ठा करने की कोशिश चल रही थी। एक दिन श्री शंकरलाल बैंकर ने आकर कहा, "हमारे प्रान्त (बम्बई) में जितनी मुख्य-मुख्य नाटक कम्पनियां हैं, वे सब मिलकर अपने सबसे अच्छे नटों द्वारा किसी अच्छे नाटक का

अभिनय करेंगी। उस दिन अगर गांधीजी थियेटर में उपस्थित हो जायं तो वे लोग उस खेल की सारी आमदनी तिलक स्वराज्य-फण्ड में देने के लिए तैयार हैं।"

उन्होंने आगे कहा, "हजारों की नहीं, लाखों की बात है, क्योंकि टिकटों की ऊंची कीमत रखेंगे।"

गांधीजी एक दम बोले, "यह नहीं हो सकता। मैं कभी पेशेवर नटों के नाटक देखने नहीं जाता। कोई मुझे करोड़ रुपये दे, तो भी मैं अपना नियम नहीं तोड़ सकता।"

: ६९ :

सत्याग्रह कोई खेल नहीं है

अहमदाबाद में मिल-मजदूरों ने अपनी मजदूरी बढ़ाने के लिए आन्दोलन शुरू किया। मिल-मालिकों के मुखिया थे श्री अंबालाल साराभाई और मिल-मजदूरों के पक्ष में थीं उन्हीं-की बहन अनसूयाबहन। दोनों के मन में गांधीजी के प्रति श्रद्धा थी। दोनों के प्रति गांधीजी के मन में सद्भाव था।

फिर भी समझौता नहीं हो सका और सत्याग्रह की नौबत आ गई। गांधीजी ने मिल-मजदूरों से प्रतिज्ञा करवाई कि जबतक मजदूरी में ३५ फीसदी वृद्धि न हो, वे काम पर वापस नहीं जायंगे।

सत्याग्रह की अवधि में मजदूरों के खाने-पीने का क्या प्रबन्ध हो, अनुसूयाबहन इसकी चिन्ता में पड़ीं। करीब दस हजार रुपये तो वे खर्च कर ही चुकी होंगी। जब गांधीजी ने सुना तो

बोले, "यह गलत रास्ता है। मिल-मालिकों के सामने तुम्हारी पूंजी कहां तक काम आयेगी ? अगर उन्हें पता चल गया कि तुम्हारे पैसे के बल पर ये लोग लड़ रहे हैं तो वे हरगिज समझौता नहीं करेंगे और मजदूर तो तुम्हारे आश्रित बन जायंगे। सत्याग्रह कोई खेल नहीं है। वह अग्नि-परीक्षा है। इन लोगों को अपने ही बल पर लड़ना चाहिए।"

परन्तु गरीब लोग कबतक उपवास करके सत्याग्रह कर सकते थे! सत्याग्रह थी भी एक नई चीज, उनके लिए ही नहीं, सारे देश के लिए। कुछ ही दिनों में मजदूरों में कमजोरी दिखाई देने लगी। वे हारकर काम पर जाने के लिए तैयार हो गये। गांधीजी से यह सहा न गया। वे सोचने लगे, "हम भूखों मरेंगे, किन्तु प्रतिज्ञा नहीं तोड़ेंगे"—ऐसी वृत्ति मज़दूरों में अगर पैदा करनी है, तो स्वयं ही उन्हें भूख का पाठ सिखाना पड़ेगा।

उन्होंने मजदूरों की सभा बुलाई और उनको समझाते हुए कहा, "जबतक आप लोगों को ३५ फीसदी वृद्धि न मिले, तबतक आपको अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहना चाहिए। आप लोग हार जायं, यह मुझे सहन नहीं होगा। मुझे साक्षी रखकर आपने प्रतिज्ञा ली है। इसलिए अब मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि जबतक आपकी शर्तें पूरी नहीं होंगी, मैं भोजन नहीं करूंगा।"

इससे मजदूरों में दैवी शक्ति आ गई। वे दृढ़ हो गये। रोज शाम को गांधीजी आश्रम से चार-छः मील चलकर दूसरों के मुहल्लों में जाते और वहां प्रतिज्ञा-पालन का महत्त्व समझाते। उनके पढ़ने के लिए रोज एक नई पत्रिका भी छपवाते।

●

संदर्भ

इस पुस्तक के प्रसंग जिन पुस्तकों से सम्पादित रूप में लिये गए हैं, उनकी संख्या लेखकों के नाम सहित साभार नीचे दी जा रही है :

इग्लैंड में गांधीजी (महादेव देसाई) २०
ऐसे थे बापू (आर० के० प्रभु) ४
कुछ देखा, कुछ सुना (घनश्यामदास बिरला) ४७,
गांधीजी, एज आई न्यू हिम (डॉ० प्रफुल्लचन्द्र घोष) ३५,
गांधीजी के जीवन-प्रसंग (सं० चन्द्रशेखर शुक्ल) ले० सुशीला नैयर ५७,
गांधीजी के जीवन-प्रसंग (सं० चन्द्रशेखर शुक्ल) बी० डी० कालेलकर २४,
गांधीजी की देन (डॉ० राजेन्द्रप्रसाद) ६२, ६३,
गांधीजी के पावन प्रसंग (लल्लूभाई मकनजी) १६, २१, ६१,
गांधीजी की योरुप-यात्रा (कुमारी म्युरियल लेस्टर) ५३,
गांधी : व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव (संकलन) महावीरत्यागी ४२,
गांधीजी के संपर्क में (चन्द्रशेखर शुक्ल) ५८,
गांधीजी के संस्मरण (ग० वा० माव[illegible]कर) ६५,
गांधीजी की साधना (रावजी भाई, [illegible]णिभाई पटेल) १, ३, ७, ५२
बा और बापू (मुकुलभाई कलार्थी) ६, १२, १७, २५,
बापू के आश्रम में (हरिभाऊ उपाध्याय) २६,
बापू की छाया में (बलवन्तसिंह) ३०, ३२, ४१, ६४,
बापू की बातें (विष्णु प्रभाकर) १[illegible], २७, २६, ४५, ४८,
बापू की झांकियां (काका कालेलकर) ५, १४, १५, २३,
४३, ४४, ५६, ६८, ६६,
बापू के जीवन-प्रसंग (मनुबेन गांधी) ४६, ५०, ६० ६७,

इस माला
की
पुस्तकें

□

१. प्रभु ही मेरा रक्षक है
२. संगठन में ही शक्ति है
३. यदि मैं तानाशाह बना
४. त्याग हृदय की वृत्ति है
५. मेरा पेट भारत का पेट है
६. मैं महात्मा नहीं हूं
७. यह तो सार्वजनिक पैसा है
८. हम कभी दम्भी न बनें
९. मेरा धर्म सेवा करना है
१०. हे राम ! हे राम !!

सस्ता साहित्य मंडल ● श्री कृष्ण जन्म-स्थान सेवा-संस्थान ● संयुक्त प्रकाशन

यह पुस्तक भारत सरकार द्वारा रियायती मू[illegible]
[illegible] किये [illegible]